पथरी-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

धर्मचन्द सरावगी

पथरी-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

धर्मचन्द सरावगी

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक :
सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट,
वाराणसी-२२१००१

संस्करण : अष्टम्
प्रतियाँ : ३,०००
कुल प्रतियाँ : २०,०००
अप्रैल, १९९४
मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

मुद्रक :
खण्डेलवाल प्रेस
मानमंदिर, वाराणसी

प्रकाशकीय

स्व० धर्मचन्द सरावगी की विशिष्ट रोग-माला के अन्तर्गत प्रकाशित होनेवाली "पथरी-रोगों की चिकित्सा" विषयक यह पाँचवीं पुस्तक पाठकों तक पहुँच रही है। श्री धर्मचन्द सरावगी प्राकृतिक चिकित्सा के अनन्य प्रेमी और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोगकर्त्ता थे। वे प्रतिदिन सुबह एक मील घूमते थे। प्राणायाम करते, ताड़ासन, पद्मासन, वज्रासन आदि करते। साथ ही कलकत्ता की व्यायामशाला में नित्य जाकर पैरललवार, चीनिंग, वालवार, रिंग, ब्रेन्चप्रेस, मुगदर आदि कई बड़े व्यायाम करते । साथ ही प्राकृतिक खान-पान व सप्ताह में एक दिन का उपवास भी करते थे। पहले वे मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के मंत्री थे। हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समय पूज्य बापू के साथ नोआखाली गये थे, वहीं से उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा मिली। कलकत्ता कारपोरेशन के काउन्सिलर और पश्चिम बंगाल के एम०एल० सी० रह चुके थे, पश्चिम बंगाल सरकार उन्हें आजीवन चार सौ पचास रुपये मासिक पेन्शन देती थी। श्री सरावगीजी ने तीन बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा और छह बार यूरोप भ्रमण कर प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान उपार्जन किया था।

श्री सरावगीजी चाहते थे कि घर-घर में प्राकृतिक जीवन तथा प्राकृतिक चिकित्सा का वातावरण बने ताकि लोग तरह-तरह की दवा और उपहारों से बचें और अपने धन और शक्ति का अपव्यय न करें।

हम लेखक के आभारी हैं जिन्होंने आम जनता के लिए यह अमूल्य निधि "पथरी-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा" पुस्तक तैयार की तथा श्री राधाकृष्ण नेवटिया के भी आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिखी। आशा है लेखक की अन्य पुस्तकों की भाँति इस पुस्तक का भी समुचित स्वागत होगा।

भूमिका

स्वास्थ्य से बढ़कर कोई आनन्द नहीं और न रोग से बढ़कर कोई संताप। रोग कितना भयानक होता है, यह रोगी ही जानता है। जिस किसी दुःखद वस्तु की उपमा रोग से ही दी जाती है। हमारे देश में स्वास्थ्य कितना मूल्यवान् है, यह किसीसे छिपा नहीं । हमारी सुविधाएँ और असुविधाएँ स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं । प्रायः सभी रोग दुःखदायी होते हैं , किन्तु पथरी उनमें बेजोड़ है। यह रोग होकर रोगी को जब पीड़ा होती है तो वह मरण को जीवन से बेहतर मानने लगता है। पथरी की चिकित्सा भी बहुधा शल्य-क्रिया द्वारा की जाती है। लेकिन वह महँगा तो है ही ,पर खतरनाक भी कम नहीं । हमारे देश की गरीबी को देखते हुए सबसे सरल चिकित्सा है, 'प्राकृतिक चिकित्सा'। पथरी -रोग भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दूर किया जा सकता है और यह सर्वजन सुलभ चिकित्सा है। प्राकृतिक-चिकित्सा के ज्ञाता मेरे सुहृद श्री धर्मचन्द सरावगी ने 'पथरी-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा' नामक यह पुस्तक लिखकर मानवता की बहुत सेवा की है।

भाई धर्मचन्दजी प्राकृतिक चिकित्सा के यशस्वी समर्थक या पृष्ठ-पोषक ही नहीं हैं, इस दिशा में किये गये उनके उद्यम प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से भी अनुकरणीय हैं । इन्होंने विदेशों में जाकर प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन किया और वहाँ से अपने देश के लिए नयी-नयी खोजों एवं प्रयोगों को भी हमारे लिए उपलब्ध कराया। इनका जीवन और कर्म इसी महत् उद्देश्य के लिए कृतसंकल्प है। इनका अवदान भी अद्वितीय रहा है। अखिल भारतवर्षीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् की स्थापना में इनका सहकार भुलाया नहीं जा सकता।

श्री धर्मचन्दजी ने अपने अनुभवों एवं प्रयोगों को कई पुस्तकों में लिपिबद्ध कर प्रकाशित करवाया है। उक्त पुस्तक हमारी उस आवश्यकता की पूर्ति करती है, जो नितान्त ही समस्या थी। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा पथरी के इलाज पर इनका यह अवदान जहाँ भारतीय जनता की अन्य व्यवस्था देखते हुए परम उपयोगी है, वहीं विदेशों को भी भारतीय चिकित्सा की जानकारी देने में सक्षम हैं।

भाई धर्मचन्दजी की स्वास्थ्य-सम्बन्धी यह चौदहवीं कृति है। मुझे आशा है कि पथरी-रोग के व्ययसाध्य और कष्टसाध्य उपचार के स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग-मुक्त होने में यह कृति वरदान सिद्ध होगी तथा जन-साधारण इसका स्वागत करेंगे और लाभ उठायेंगे।

५२, जकरिया स्ट्रीट,
कलकत्ता-७ —राधाकृष्ण नेवटिया
३०-१-'७३

दो शब्द
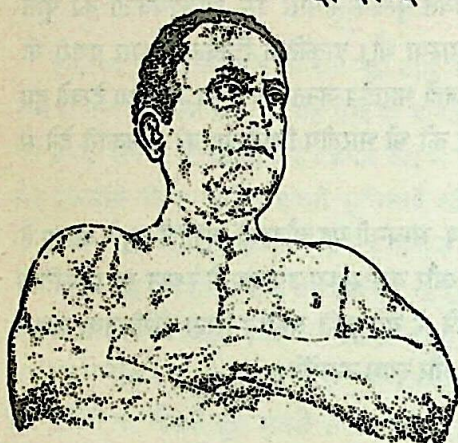
चिकित्सा की खोज में वैज्ञानिक खोजों तथा विश्लेषणों के द्वारा नयी-नयी औषधियों के आविष्कार के बावजूद देश-विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है, क्योंकि रोगी औषधियों से तंग आकर प्रकृति की शरण में आते हैं और लाभ उठाकर उसके भक्त बन जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा कोई चिकित्सा नहीं, बल्कि जीने की एक कला है। जो इसका मजा चख लेता है, फिर वह इसे नहीं छोड़ता। विदेशों में प्राकृतिक चिकित्साविषयक पर्याप्त साहित्य प्रकाशित हो रहा है। भारत में भी प्राकृतिक चिकित्सा की माँग बढ़ रही है, किन्तु प्रगति बहुत धीमी है। इस दिशा में अभी बहुत काम करने बाकी है।

कई वर्षों से मेरी इच्छा थी कि हिन्दी भाषा में ऐसी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हों जिनमें एक-एक रोग के लक्षण, कारण और निवारण का विवरण विस्तारपूर्वक सरल भाषा में हो। मूल्य भी अधिक न हो। इस सम्बन्ध में मैंने "सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली से बात की। उनके यहाँ से "सरल योगासन" और "तन्दुरुस्त रहने का उपाय" पुस्तक प्रकाशित हुई जिनके आठ-आठ संस्करण प्रकाशित हुए। फिर सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी

से चर्चा की। वहाँ से अब तक तेरह पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें से कइयों के आठ-आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इस पुस्तक में मैंने जो कुछ भी लिखा है वह मेरा अनुसंधान नहीं। पर ४०-४५ वर्षों में प्राकृतिक चिकित्सासम्बन्धी देशी-विदेशी साहित्य पढ़ा, प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्रों में उपचार देखे और मैंने भी कई रोगियों पर आजमाया और अपने जीवन में भी उतारा।

आशा है, पाठक इस छोटी-सी पुस्तिका "पथरी-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा" से लाभान्वित होंगे। यदि किसी बन्धु को कहीं कुछ सुझाव देने जैसा लगे तो निःसंकोच सूचित करें ताकि अगले संस्करण में यथोचित सुधार हो सके।

इस पुस्तक की भूमिका भाई राधाकृष्णजी नेवटिया ने लिखी है। श्री नेवटियाजी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमी हैं और उन्होंने कई किताबें भी लिखी हैं। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ।

—धर्मचन्द सरावगी

अनुक्रम

•

चित्र-सूची

•

विषय-प्रवेश

भगवान् ने जीवन इसलिए दिया है कि हम अपने पार्थिव-शरीर को स्वस्थ रखते हुए उसके द्वारा अपनी मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास करें और शरीर में वास करनेवाली आत्मा को इतना उच्च बना लें, जिसके द्वारा हमें जीवन का उच्चतम लाभ प्राप्त हो सके, अर्थात् हम मोक्ष के अधिकारी बन जायँ।

किन्तु यह पार्थिव शरीर सुचारु रूप से तभी काम कर सकता है, जब इसके भीतरी और बाहरी सभी अवयव अपना-अपना काम ठीक ढंग से करते रहें, और उनमें कूड़ा-कचरा, रेत-पत्थर आदि विजातीय द्रव्य न जमने पायें, जिससे उनके स्वाभाविक कार्य में बाधा या कठिनाई पड़े और हमारा शरीर बजाय मोक्ष का साधन बनने के, अस्वस्थ होकर समय से पहले ही नष्ट हो जाय।

यह सही है कि स्वास्थ्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, पर इस अधिकार को अक्षुण्ण अथवा कायम रखने के लिए हमें बहुत-कुछ करना पड़ता है, बहुत कीमतें चुकानी पड़ती हैं। बिना साधना, तपस्या अथवा पुरुषार्थ के न किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त किया जा सकता है और न उसकी रक्षा ही की जा सकती है।

हमारे शरीर में मुख्य चीज रक्त है। जब रक्त शुद्ध रहता है तो उसके द्वारा शरीर के सभी अवयवों को उचित पौष्टिक भोजन मिलता रहता है, जिससे वे पूर्णतः स्वस्थ रहते हैं। फलतः वे जीवन-पर्यन्त अपना-अपना कार्य सुचारु रूप से करते रहते हैं। लेकिन रक्त अशुद्ध हो जाता है तो शरीर के एक या अनेक अवयवों में कूड़ा-कचरा जमा हो जाने से उनके कार्यों में

अस्वाभाविकता आ जाती है और जीवन संकट में पड़ जाता है।

शरीर का रक्त अशुद्ध होता है असंयमी जीवन-यापन से और खान-पान की गलतियों से । यह अशुद्ध रक्त शरीर में न केवल जहाँ-तहाँ या पूरे शरीर में मामूली किस्म का कचरा ही जमा कर देता है, बल्कि कभी-कभी उससे शरीर के किन्ही-किन्ही अवयवों में रेत के छोटे-छोटे कणों से लेकर मुर्गी के अण्डे के बराबर पत्थर भी पैदा हो जाते और पैदा होते रहते हैं, जिनका यदि उचित इलाज द्वारा निराकरण न किया जाये तो वे रोगी का प्राण लेकर ही छोड़ते हैं । आगे की पंक्तियों में शरीर की इसी असाधारण और भयावह अवस्था पर विवेचन-विचार किया जायगा ।

उत्तम स्वास्थ्य के प्राकृतिक नियमों के फलस्वरूप कभी-कभी उपर्युक्त प्रकार के रेत के कण और पत्थर प्राय: आगे के प्रकरण में उल्लिखित अवयवों में उत्पन्न हो जाते हैं और उन्हीं अवयवों के नाम से पुकारे जाते हैं। ०

संसार के गरीब देशों में मानसिक रोग से पीड़ित लगभग ४ करोड़ व्यक्ति हैं, जिनकी कोई चिकित्सा नहीं की गयी और उनमे बहुत-से व्यक्तियों की मानसिक चिकित्सा की सुविधा भी नहीं है। विश्व-स्वास्थ्य संगठन ने इसके लिए चिन्ता व्यक्त की है। ०

: १ :

पित्ताशय की पथरी

१. पित्ताशय एवं पित्त-नलिकाओं में जो पथरी उत्पन्न होती है, उसे पित्ताशय की पथरी (अश्मरी) कहते हैं। अंग्रेजी में इसे Gall stones (गाल स्टोन्स) कहते है ।

२. मूत्र-यंत्र एवं मूत्राशय में जो पथरी बनती है, उसे मूत्र-यंत्र और मूत्राशय की पथरी (वृक्काश्मरी) कहते हैं तथा अंग्रेजी में Stones of the Kidney and Urinary bladder कहते हैं ।

३. शुक्राशय में जो पथरी बनती है, उसे 'शुक्राशय की पथरी' कहते हैं।

४. प्लीहा (Spleen) में जो पथरी (calculi) बनती हे, उसे 'प्लीहा की पथरी' कहते हैं।

पथरी-रोग आदिम असभ्य जातियों में नहीं पाये जाते । कब्ज, बवासीर आदि कतिपय रोगों के समान पथरी-रोग भी सभ्यता का रोग है।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व यूरोप और अमेरिका में बहुत-से लोग, विशेषतया पथरी से पीड़ित रहते थे । लेकिन अब यूरोप और अमेरिका में इस रोग की व्याप्ति बहुत कम हो गयी है और युवकों की अपेक्षा वृद्ध ही इस रोग से अधिक आक्रांत दीखते हैं। संसार के कुछ देशों, जैसे—स्वीडेन, मध्य-एशिया, मेसोपोटामिया, मिस्र, चीन तथा भारत में यह रोग अधिक दिखाई देता है । उत्तरी अमेरिका जैसे देशों में यह बहुत कम होता है ।

अनुभवी विशेषज्ञों का कहना है कि भौगोलिक विभाजन का सम्बन्ध केवल पथरी की उत्पत्ति के साथ ही नहीं, बल्कि संगठन के अनुसार उसके प्रकार के साथ उसकी उत्पत्ति मूत्र-यंत्र आदि संस्थानों के उपांगों के साथ भी होता है। जैसे एशियाई देशों में पथरी बालकों में अधिक दिखायी देती है तो यूरोप-अमेरिका में वृद्धों में अधिक। चीन और भारत में पित्ताशय की पथरी अधिक तो यूरोप-अमेरिका में मूत्राशय की पथरी अधिक दिखायी देती है। यूरोप में पथरी एक रासायनिक द्रव्य की तो भारत में प्रायः एक से अधिक रासायनिक द्रव्यों के मिश्रण की पायी जाती है।

सिद्धान्ततः गरम देशों में ठंडे देशों की अपेक्षा पथरी-रोग अधिक होता है। कारण, गरम देशों में पसीना अधिक निकलकर मूत्र के निकलने में कमी होकर वह गाढ़ा हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक सिद्धान्त यह भी बताया जाता है कि पथरी रोग मुख्यतः बालकों और युवकों का रोग है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में यह रोग दुगुना या तिगुना अधिक दिखायी देता है। गर्भावस्था में मूत्र-प्रवाह में मन्दता या स्थिरता आने पर भी स्त्रियों में यह रोग कम होता है। जो भी हो, भारत के सम्बन्ध में यह कहना कठिन है कि पथरी-रोग युवकों को अधिक होता है या प्रौढ़ों को, क्योंकि दोनों ही इस रोग से पीड़ित देखे जाते हैं।

मैककैरिसन का मत है कि भारत में, प्रमुख रूप से पश्चिमोत्तर भारत में ऐसे क्षेत्र हैं, जो 'पथरी-क्षेत्र' के नाम से पुकारे जाते हैं। इन क्षेत्रों में रहनेवालों में पथरी की बीमारी आम बात है।

पथरी-रोग वस्तुतः गरीबों का रोग है, ऐसा भी कहा जाता है। कारण, गरीब आहार में अन्न का अधिक उपयोग करते हैं और फल -तरकारियों का कम, जिनके अधिक प्रयोग करने पर पथरी होने की कम सम्भावना रहती है।

सरकारी आँकड़ों से जाना गया है कि केवल इंग्लैण्ड में प्रतिवर्ष १,५८,००० व्यक्ति पथरी-रोग से आक्रान्त होते हैं और ७,००० रोगी मरते

हैं। वहाँ के विशेषज्ञों का कहना है कि पथरी-रोग का नम्बर मारक रोगों में तीसरा है, कैंसर-रोग का दूसरा और हृदय-रोग का पहला।
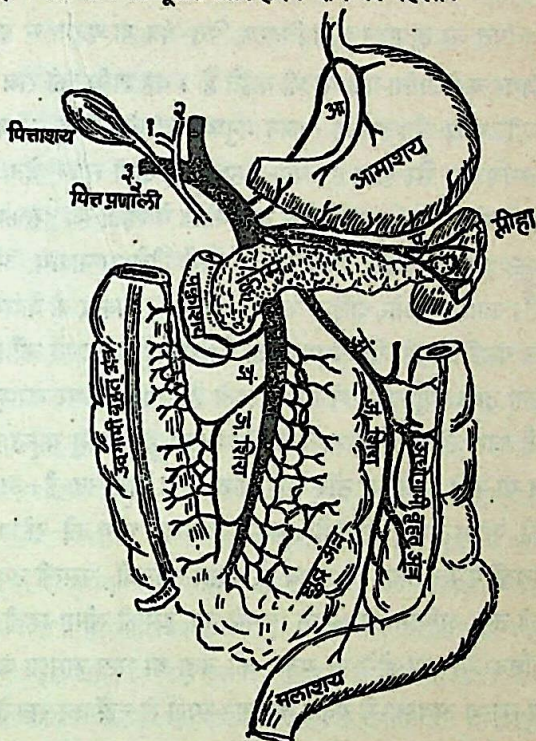
पित्त-यंत्र-संस्थान

चित्र-व्याख्या : अं अ शिरा = अंत्र अधोशिरा, ऊ ऊ शिरा = अंत्र ऊर्ध्व शिरा, आ = आमाशयिकी शिरा, स = संयुक्ता शिरा, १,२ =दाहिना और बायाँ पित्तस्रोत, ३= पित्ताशय की नली, प= प्लीहा की शिरा ।

पित्त और पित्त-यंत्र-संस्थान

पित्ताशय की पित्त नलिकाओं की पथरी की उत्पत्ति, स्थिति तथा उसके

निराकरण की प्रक्रिया आदि समझने के पहले यह आवश्यक है कि पित्त एवं पित्त-यंत्र-संस्थान के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी प्राप्त कर ली जाय।

यकृत : पित्त का उत्पादन तथा वितरण पित्त-यंत्र या यकृत में होता है। यकृत को जिगर, कलेजा या 'लीवर' भी कहते हैं । यह शरीर की सब ग्रंथियों में सबसे कड़ी ग्रंथि है। इसका वजन मनुष्य के शरीर में कुल वजन का ४०वाँ या लगभग २ सेर होता है। यकृत का रंग बादामी लाल होता है। यह पेट की दाहिनी ओर ४-५ पसलियों से दबा कोख में रहता है। इसकी लम्बाई लगभग १ फुट और चौड़ाई ८ इंच होती है। इसके नीचे अन्नाशय, आँत और वृक्क होते हैं। ऊपर की ओर दाहिना फेफड़ा होता है। विकार के कारण सूजन आने पर यह पसलियों के नीचे उतर आता है। यकृत के सामने की ओर का किनारा पतला तथा पर्शुकाओं से मिला रहता है। इसके ऊपर का पृष्ठभाग गोल होता है, जिसे ठोंकने से मन्द-ध्वनि निकलती है। किन्तु यकृत के ऊपर फेफड़ों पर या नीचे आँतों पर ठोंकने से शब्द स्पष्ट निकलता है। अतः यहीं से यकृत की सीमा समझी जाती है । यकृत के ऊपरी भाग की सीमा दाहिनी ओर की पाँचवीं पसली तक है। पार्श्व के भीतर आठवीं पसली तक, पीछे दसवीं पसली तथा अन्तिम पसली के किनारे तक इसकी सीमा रहती है। इस सीमा से अधिक या कम होने पर यकृत को बढ़ा या घटा समझा जाता है। साधारणतया स्वस्थ अवस्था में यकृत का ज्ञान स्पर्श से नहीं कर सकते। किन्तु उसके बढ़ने पर यानी रुग्णावस्था में स्पर्श से स्पष्ट जाना जाता है।

यकृत के पाँच भाग होते हैं । इनमें दायें और बायें भाग बड़े होते हैं, शेष तीन भाग इन दोनों से छोटे। यकृत में लगी पाँच रक्तवाहिनियाँ भी पाँच प्रकार की होती हैं। एक रक्तवाहिनी पक्वाशय तथा अन्न की शिराओं से मिलकर बनती है, जिसे अंग्रेजी में 'Portal vein' कहते हैं। इसका आकार बड़ा होता है और यकृत की शिराओं के बीच रहती है। यह छोटी-छोटी कई शाखाओं में

विभक्त होकर कोशिकाओं के रूप में अपना रक्त प्रसार करती है।-

यकृत का प्रत्येक भाग ' खण्डिका' कहलाता है, जो गोलाकार होता है। प्रत्येक खण्डिका का व्यास आधा अंगुल का होता है। ये खण्डिंकाएँ यकृत-केशिकाओं द्वारा बनती हैं। इनके बीच-बीच में रक्तवाहिनियों तथा पित्त-वाहिनियों का जाल होता है। यकृत,कोषा,जो यकृत को ग्रन्थि का रूप देते हैं, मूलतः अण्डाकार होते हैं । किन्तु आपस में जकड़ने और दबने के कारण बहुभुजीय आकार धारण कर लेते हैं। प्रत्येक यकृत कोष में १ या २ न्यष्ठीला (Nucleus) होती है। कोषा-रस में स्नेह और मधुजन के बहुत-से कण होते हैं।

'पोर्टल वेन' , यकृत-धमनी तथा यकृत-प्रणाली—तीनों यकृत ग्रन्थि में साथ-साथ कार्य करती रहती हैं । तीनों पर एक प्रकार के तन्तु का कोष चढ़ा रहता है। यह कोष सम्पूर्ण यकृत को ढँकनेवाले 'कैप्सूल' के समान होता है।

'पोर्टल वेन' अपने मार्ग में छोटी-छोटी शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त होकर खण्डिकाओं के बीच-बीच में घुसी होती है। ये शाखाएँ खण्डिकाओं को एक-दूसरे से पृथक् और सीमित कर देती हैं । इन शाखाओं में से एक शाखा, जो सघन होती है, केशिका-जाल के रूप में खण्डिकाओं के पदार्थ में प्रवेश करती है। इस जाल से फिर एक शिरा बनती है, जो खण्डिका के केन्द्र भाग में होने के कारण ' अन्तःखण्डिकीय शिरा' कहलाती है। ये शिराएँ आपस में मिलकर उपखण्डिका शिरा बनती हैं । इन्हींको यकृत-शिराएँ कहते हैं ।

यकृत-धमनी की शाखा भी 'पोर्टल वेन' के समान ही शाखाओं में विभक्त होकर यकृत के विभिन्न भागों का पोषण कर और खण्डिकीय केशिकाओं में बँटकर अन्तर और अन्तःखण्डिकीय शिराओं को मिलाती हैं ।

यकृत की पित्त-प्रणाली का विभाजन भी 'पोर्टल वेन' के समान होता है। इसकी बड़ी शाखाओं का स्तर स्तम्भाकार कोशाओं का और छोटी शाखाओं का

बहुभुजीय कोशाओं का होता है। पित्त की कोशिकाएँ यकृत की कोशाओं के मध्य जन्म लेती हैं। वे सदा यकृत -कोशाओं द्वारा चारों ओर से घिरी रहती हैं। इसलिए यकृत-कोष और पित्त -प्रणाली का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होता है।

यकृत ग्लूकोज और ग्लाईकोजेन का भण्डार है। वह पाचक पित्त की निर्माणस्थली तो है ही। आयुर्वेदानुसार पित्त अग्नि है। ग्लूकोज शरीर में ज्वलन-क्रिया में अत्यधिक प्रवृत्त होकर ताप को स्थिर रखता है।

क्लाड बर्नार्ड महोदय के अन्वेषणानुसार यकृत में शर्करा रहती है। यह शर्करा साधारण शर्करा नहीं, बल्कि 'ग्लाईकोजेन, के रूप में पायी जाती है। बर्नार्ड साहब ने यह भी सिद्ध किया है कि यकृत में ही कोई ऐसा पदार्थ है, जो शर्करा में परिवर्तित हो जाता है। इस तथ्य से यह प्रकट है कि यकृत में जो ग्लाईकोजेन नामक शर्करा होती है, वहीं ग्लूकोज में परिवर्तित हो रक्त में पहुँच जाती है।

यकृत का क्लोम, वृक्क और प्लीहा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्लोम में 'इन्सुलिन' बनता है, जो रक्त में मिल जाता है और रक्त द्वारा यकृत में पहुँचकर उसे अधिक शर्करा बनाने से रोकता है। जब क्लोम रोगी हो जाता है तो यकृत अधिक मात्रा में शर्करा बनाने के लिए उन्मुक्त-सी हो जाती है। तब मूत्र द्वारा वह बाहर निकलने लगती है। तब हम शरीर की उस अवस्था को 'मधुमेह' रोग के नाम से पुकारते हैं।

मूत्र द्वारा यूरिक एसिड निकला करता है, उसे वृक्क नहीं बनाते, बल्कि विशेष रूप से वह यकृत और प्लीहा में बनता और रक्त-प्रवाह द्वारा वृक्कों में पहुँचता है, जिसे वे मूत्र द्वारा बाहर निकालते रहते हैं।

यकृत का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य पित्त का उत्पादन है, जो उसके कोषाणुओं की विशेषता है। पित्त का निर्माण और स्राव यकृत द्वारा निरन्तर होता रहता

है। वह एक क्षण के लिए भी ठीक उसी प्रकार बन्द नहीं होता, जिस प्रकार दिल की धड़कन मरते दम तक क्षणभर के लिए भी बन्द नहीं होती । पित्त के स्राव की मात्रा भोजन के २ घण्टे बाद सबसे अधिक और ८ घण्टे बाद सबसे कम रहती है । श्वास-प्रश्वास-क्रिया का भी इस स्राव पर प्रभाव पड़ता है । गहरी साँस लेने पर यकृत-प्रणाली में, जो उसे द्वादशांगुल आँत में पहुँचाती है, उसका प्रवाह तीव्र हो जाता है ।

यकृत का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य शरीर की गन्दगी और विषों को शरीर से निकालकर उसे निर्मल बनाये रखना है। यकृत के कोश पाचन-क्रिया के परिणाम में आँत के भीतर तैयार मुक्त-रस के सत्त्व का प्रयोग करते हैं और शरीर के लिए हानिकारक पदार्थों का मल-निष्कासन अंगों द्वारा निकल जाने के लिए सुविधा प्रदान करते हैं ।

यकृत का तीसरा कार्य है शरीर में 'ग्लाइकोजेन' की रक्षा करना । हम जो गुड़, शक्कर, चावल, अंगूर आदि खाते हैं, वे सब पाचन-क्रिया द्वारा ग्लूकोज के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं । फिर रक्त के साथ मिलकर वह ग्लूकोज यकृत में आता है, जहाँ यकृत-कोश उसे ग्लाइकोजेन में परिवर्तित कर अपने पास रख लेती है । पश्चात् आवश्यकतानुसार उसे पुनः ग्लूकोज में बदलकर शरीर में भेज देती है ।

यकृत का चौथा कार्य रक्त-निर्माण और उसकी शुद्धि है। शार्ङ्गधर में लिखा है :

यकृत् रञ्जकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयम् ।

अर्थात् यकृत रक्त, पित्त और रुधिर का स्थान है और रक्त ही मनुष्य का जीवन है : देहस्य रुधिरं मूलम् । अतः यह सिद्ध है कि इस शारीरिक परिवार का पोषण करनेवाला कमाऊपूत यकृत ही है । इसीकी मेहनत से कमाये शुद्ध रक्त के बल पर मानव-शरीर खड़ा है । यदि यकृत अपना

रक्त-शुद्धि और निर्माण का कार्य करना छोड़ दे तो शरीर एक क्षण भी टिक न सकेगा।

रक्त-शोधन के लिए जिस प्रकार फुफ्फुस-यंत्र सदैव क्रियाशील रहता है उसी प्रकार यकृत भी रक्त शुद्ध करने का एक मुख्य यंत्र माना गया है। श्वास छोड़ते समय जिस प्रकार रक्त का मैल फेफड़ों से होकर वायु के साथ बाहर निकलता है, उसी प्रकार रक्तस्थित विभिन्न प्रकार के और भी मल यकृत द्वारा निरन्तर साफ होते रहते हैं।

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण कार्यों के अलावा यकृत प्रोटीन को 'कार्बोज में परिणत करता है, शरीर के उपयोग के लिए वसा का उत्पादन और उसका शोधन करता है और तन्तुओं का निर्माण करनेवाला ' अमिनो एसिड बनाता है। शरीर के लिए उपयोग के कुछ तरह का अम्ल बनाता है और वनस्पतियों को पीत-रजक कणों को विटामिन 'ए' का रूप देने के लिए कीमियागिरी भी करता है। वह शरीर में एक प्रकार का ऐसा तत्त्व उत्पन्न करता है, जिसे क्षति पहुँचने की हालत में तन्तु प्रयोग में लाते हैं। वह कुछ ऐसे रासायनिक तत्त्वों का भी उत्पादन करता है जो रोग उत्पन्न करनेवाले तन्तुओं को नष्ट करते हैं या उन्हें निरपेक्ष बनाते हैं। जीवाणुओं और अन्य विषैले तत्त्वों के रक्त-प्रवाह में पहुँचने पर यकृत उन्हें नष्ट या उनका प्रभाव कम करने का प्रयत्न करता है

यकृत का यह महत्त्वपूर्ण कार्य शरीर में रक्त के परिमाण का नियमन और रासायनिक तत्त्वों का सन्तुलन करना है। शरीर के साधारण रूप में कार्य करते रहने के लिए एक सीमा से अधिक तरल पदार्थों का मिश्रण नहीं होना चाहिए। यकृत के इस कार्य की ही बदौलत हम लोग रक्त-कोशों की संख्या में बिना कोई परिवर्तन किये बहुत-सा पेय ग्रहण कर सकते हैं।

पित्ताशय : यकृत के दाहिनी ओर नीचे नवीं पसली के पास गाजर के समान तीन इंच लम्बी एक चमड़े की थैली जुड़ी होती है। यही पित्ताशय है,

यह वस्तुतः यकृत का ही एक भाग है। यकृत में बना पित्त इसी में आकर जमा हो जाता है ।

पित्ताशय के बायीं ओर एक गड्ढे में यकृत का गोल बन्धन होता है, इसके पीछे एक गहरा गड्ढा होता है, जिसे 'यकृत-द्वार' कहते हैं । यकृत की दाहिनी ओर से बायीं ओर एक-एक नली निकलकर यकृत-द्वार में जा मिलती है । इसे 'संयुक्त-पित्तस्रोत' कहते हैं । इस पित्तस्रोत और पित्ताशय की नली के योग से पित्त-प्रणाली बनती है, जिसके द्वारा पित्त पक्वाशय में पहुँचता है ।

पित्ताशय का नियंत्रण करनेवाली वात-नाड़ियों का उद्‌गम मेरुदण्ड का ९वाँ मोहरा है । आमाशय का नियमन भी यही स्नायु करता है । अतएव एक में यदि कोई कष्ट हो तो दूसरे में उसकी अनुभूति होनी अनिवार्य है ।

पित्ताशय का कार्य यकृत में बने पित्त के शेष अंश को जमा करना और फिर इस महत्वपूर्ण पित्त को ग्रहण किये हुए भोजन, विशेषकर प्रोटीन के समुचित पाचन और अभिशोषण के लिए आँत में पहुँचाना है ।

स्वस्थ पित्ताशय को २४ घण्टे में २ या ३ बार लगभग पूरा-पूरा खाली हो जाना चाहिए ।

पित्त : पित्त सुनहले भूरे रंग का यकृत का स्राव है, जिसका स्वाद बहुत कड़वा होता है । यह जबर्दस्त पाचक-रस होते हुए भी एक भयंकर विष है । यह क्षारमय होता है और चिकनाई के पाचन और उपयोग में बड़े महत्त्व का कार्य करता है । यह आँतों को उद्दीप्त करता और उन्हें क्रियाशील रखता है । यह लसलसा होता है और जीवाणुओं का नाश करता है ।

पित्त में यकृत द्वारा त्यक्त मल भी मिला रहता है । पित्त को रंग प्रदान करनेवाले पदार्थ विलिसविन' और ' विलबर्डिन है, जो क्रमशः लाल् और हरे रंग के होते हैं । पहले की प्राप्ति यकृत और प्लीहा में रक्तकोशों का भंजन

होने पर रक्त के लाल वर्ण से होती है । रजक कणों को पित्त छोटी आँत में पहुँचा देता है, जहाँ उनमें के कुछ कण मल को रंजित कर देते हैं और कुछ रक्त -प्रवाह में ही रुक जाते या वृक्कों से होकर बाहर निकल जाते हैं, जिससे मूत्र भी रंजित हो जाता है ।

पित्त में ८६ प्रतिशत जल रहता है, जिसमें वित्तीय लवण ,पित्तीय रंजक, लेसिथिन और कोलेस्टेरोल आदि घुले-मिले रहते हैं। इन पदार्थों में कोलेस्टेराल ही वह पदार्थ है जो कष्ट का उत्पादक होता है और उसी के कारण 'पित्त की पथरी ' असह्य पीड़ा होती है ।

पित्त का स्राव निरन्तर होता रहता है, पर उत्पादन बराबर एक-सा न होकर भोजन करने पर कुछ अधिक होता है । चिकनाई के पाचन से इसका अधिक सम्बन्ध है। इसलिए चिकनाई लाने पर तो और भी अधिक स्राव होता है । प्रतिदिन डेढ़-दो सेर पित्त यकृत पित्ताशय में भेजता है । इसमें से थोड़ा-सा पाचनक्रिया में खर्च होता है, कुछ बाहर निकल जाता है और अधिकांश शरीर में पुनः जज्ब हो जाता है।

पित्त शरीर के अन्य पाचक-रसों को उद्दीप्त करने का भी कार्य करता है उदाहरणार्थ, द्वादशांगुल आन्त्र में जहाँ आमाशय से खाद्य-पदार्थ के निकलने पर उसकी पाचन-क्रिया पूर्ण होती है, क्लोमरस का इसे सहयोग प्राप्त होता है, जिससे वह श्वेतसार और प्रोटीन को दूनी और किसी को तिगुनी शक्ति के साथ पचाने का काम करने लगता है । इस प्रकार शरीर के उचित पोषण के लिए पित्त अनिवार्य रूप में आवश्यक है ।

पित्त एक और महत्त्वपूर्ण कार्य करता है । बाहर रहने पर उसमें सड़न रोकने की शक्ति नहीं होती, पर आँतों में पहुँचकर वह खाद्य-पदार्थ को जल्द सड़ने नहीं देता । अगर आँतों में उसका पहुँचना रोक दिया जाय, तो खाद्य-पदार्थ बहुत जल्द सड़कर गैस उत्पन्न करने लगेंगे ।

यकृत के भार के बराबर पित्त २४ घण्टे में यकृत से निकलता रहता है । पित्ताशय में पथरी होने अथवा किन्हीं अन्य कारणों से यदि पित्त यकृत से न निकले या न निकल सके, तो वह रक्त में मिलकर उसे सुखाता है । पित्त मिला रक्त शरीर में फैलकर पोलियो रोग भी पैदा कर देता है ।

पित्त की पथरी क्यों और कैसे बनती है ?

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि पथरी-रोग गलत भोजन का ही दुष्परिणाम है। गलत भोजन का एक रूप है भोजन में आक्जलिक एसिड की अधिकता। ऐसे भोजन से कैलशियम आक्जलेटवाली पथरी का निर्माण होता है। प्रतिदिन जो लोग इस प्रकार का भोजन करते हैं, उन्हें पथरी का रोग हो जाना अस्वाभाविक नहीं । चाकलेट,कोको जैसे खाद्यों में आक्जलिक एसिड की प्रचुरता पायी जाती है। यूरोप और अमेरिका के देशों में ही नहीं , हमारे देश में भी चाय, बिस्कुट, डबलरोटी जैसी निष्प्राण वस्तुएँ खाने का रिवाज इतना बढ़ गया है कि वह सभ्यता का प्रतीक माना जाता है। नाश्ते में ही ये चीजें खायी ज़ाती हैं, ऐसा नहीं; बल्कि सुबह और शाम तक भोजन इन्हीं जैसी चीजों से भरा होता है। इस प्रकार के खाद्य-पदार्थों से सबसे बड़ा अहित तो यह होता है कि शरीर के कैलशियम की मात्रा का ह्रास होने लगता है। विटामिन के अभाव में पथरी का निर्माण होता है। हरी सब्जियाँ और फल कम खाने तथा मांस-मछली,पकवान, रबड़ी आदि भारी चीजें अधिक खाने से यह रोग होता है। सन्तुलित प्राकृतिक भोजन करनेवालों को यह रोग कभी नहीं होता ।

जो लोग आवश्यकता से अधिक भोजन करते हैं , बहुत अधिक मसाला और गरिष्ठ भोजन करते हैं, पानी बहुत कम पीते हैं , कोष्ठबद्धता के शिकार होते हैं और कम परिश्रम करते हैं, साधारणतः उन्हीं लोगों को यह रोग होता है। एक डाक्टर ने २२६९ पित्त-पथरी के रोगियों की परीक्षा करके पाया कि उनमें से ८० प्रतिशत व्यक्ति कठिन कोष्ठबद्धता के शिकार थे। इसके

अतिरिक्त जो लोग बहुत दिनों तक पेट के रोग से पीड़ित रहते हैं , आमतौर पर उन्हींको यह रोग होता है।

पित्ताशय में पथरी का बनना स्वाभाविक नहीं है। पित्ताशय में पथरी तभी बनती है, जब स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों की अवहेलना की जाती है और कब्ज आदि रोगों द्वारा शरीर की स्थिति बहुत दिनों तक विकार युक्त रहती है। यह रोग कभी भी एक दिन में उत्पन्न नहीं होता । अतः पथरी को मूल रोगमानना
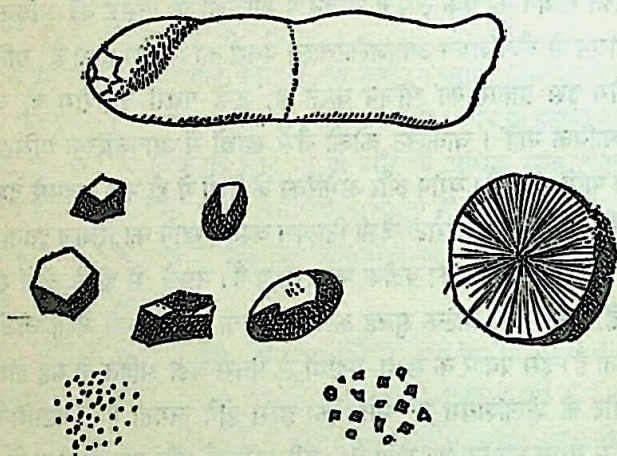
· छोटी-बड़ी पथरियाँ

भूल है। मूल रोग है, शरीर की विकारयुक्त स्थिति, जिसके दूर हुए बिना पित्ताशय में पथरी बनना रुक नहीं सकता।

अप्राकृतिक आहार-विहार, आहार में चिकनाईवाले पदार्थों की अतिशयता, औषधियों का अधिक सेवन, मेहनत की कमी,मसालों का अधिक सेवन, मांस-मछली, अण्डा आदि प्राणिज पदार्थों का अधिक सेवन, अतिनिद्रा, अतिमद्यपान,मलावरोध, स्त्रियों में प्रदरादि रोग, थकान, परेशानी या

नाड़ी-दौर्बल्य के कारण जब शरीर रोगी होने लगता है तब सबसे पहले पित्तयंत्र यकृत रोगी होता है। क्योंकि पचाने के काम में यकृत का बड़ा हाथ है। नतीजा यह होता है कि रोगी यकृत में तैयार हुआ पित्त विकारयुक्त गाढ़ा और चिपचिपा हो जाता है जो पित्ताशय में पहुँचकर उसमें सूजन और प्रदाह उत्पन्न करता है। इसके फलस्वरूप पित्ताशय की श्नैष्मिक के रुग्ण होने पर उसमें स्थित दूषित पित्त और कफ सूखकर पत्थर की तरह कठोर हो जाता है, जिसे 'पथरी' कहते हैं।

छोटी-से-छोटी पथरी सरसों के दाने के बराबर होती हैं और बड़ी-से-बड़ी 'अखरोट' या अण्डे के बराबर। एक के बजाय कई और विविध प्रकार की पथरियाँ भी बन सकती हैं। पथरियों की आकृतियाँ कभी-कभी तिरछी, बाँकी और नोकदार भी होती हैं। जब ये पथरियाँ ताजी होती हैं तो इनमें आर्द्रता होती है तथा इनका भार उस अवस्था में अधिक होता है। मगर जब ये सूख जाती हैं तो इनका भार कम हो जाता है। इनकी रचना में मुख्य घटक तो पित्त है; शेष लवण, सोडा, पोटाश आदि द्रव्य हुआ करते हैं। ये पथरियाँ काले रंग, हरे, सफेद आदि कई रंगों की होती हैं। इनमें कोलेस्टेरिन और कैलशियम मुख्य रुप में होते हैं। जब पित्ताशय में केवल एक बड़ी पथरी बनती है तो उसकी सतह झुकावदार होती है। लेकिन पथरी की संख्या अधिक होने पर एक-दूसरे के दबाव के कारण उनकी शकल स्फटिक जैसी हो सकती है। "पथरी', 'पत्थर' अथवा 'अश्मरी' नाम से यह न समझना चाहिए कि वह पत्थर या पत्थर जैसी कोई सख्त चीज होती है। हाँ, वह इतनी कड़ी अवश्य होती है कि उसकी शकल कायम रह सके। दरअसल वह पत्थर से बहुत मुलायम होती है।

पथरी का निर्माण अधिकांशतः पित्ताशय के प्रतिश्याय (जुकाम) का ही परिणाम है। पित्त प्रणाली अथवा पित्ताशय के प्रतिश्याय के भी वे ही कारण हैं जो अन्य अंगों के प्रतिश्याय के हैं। सभी प्रकार के खाद्य-पदार्थ को

आवश्यकता से अधिक ग्रहण करना इसका मुख्य कारण है। प्रोटीन और चिकनाई अधिक खाने पर यकृत और पित्त-प्रणाली को श्लैष्मिक कला का कोई भी ग्रहणशील भाग पित्ताशय से ग्रस्त हो सकता है। प्रतिश्याय की अवस्था में पित्त विकार हो जाता है और उसमें कोलेस्टरिन जमकर शरीर के विभिन्न अंगों में बिखरने लगता है। जुकामवाले पित्ताशय में श्लेष्मा, पित्ताशय के आवरण के कोषाणु, कोलेस्टरिन जमकर शरीर के विभिन्न प्रकार के उपादान जमकर अनन्त पथरियों का रूप धारण करते हैं ।

वस्तुतः होता यह है कि पित्ताशय में आवश्यकता से अधिक बना पित्त सदा-सर्वदा जमा रहता है। वहाँ से वह एक नलिका द्वारा आँत में पहुँचता है, पर आँत की आवश्यकता से अधिक होने पर उसी नलिका से निकली एक शाखा के जरिये पुनः पित्ताशय में पहुँच जाता है और आवश्यकता न होने तक वहीं जमा रहता है। यही स्वाभाविक साधारण स्थिति है। लेकिन पित्ताशय या पित्तप्रणाली जब प्रतिश्याय से ग्रस्त हो जाती है और उसमें श्लेष्मा का निर्माण बहुत अधिक हो जाता है, तो उसका बाहर निकलना कठिन हो जाता है। फलतः वह पित्ताशय की अन्तस्त्वचा और कुछ रासायनिक द्रव्यों से मिलकर जम जाता और इस प्रकार पथरी का निर्माण हो जाता है। जैसे चाय की केटली के अन्दर कुछ दिनों के अन्तराल द्वारा परित्यक्त खुरदरा पपड़ी जैसा पदार्थ जम जाता है, पित्ताशय के भीतर भी ठीक यही अवस्था होती है। पहले-पहल कोलेस्टेरोल तलछट के थोड़े से अंश को ही अधःक्षिप्त करता है,पर यह अधःक्षिप्त पदार्थ एक बार निर्मित हो जाने पर फिर वह कभी घुलने का नाम नहीं लेता। इसके बाद पथरी तो दिनोंदिन बड़ी होती जाती है। पहाड़ से लटकते हुए बर्फ की गेंद की तरह रुके हुए पित्त की तलछट बढ़ती हुई इस पथरी के बराबर मिलती रहती है और इसकी वृद्धि में योग देती रहती है।

पित्त की पथरियाँ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक पायी जाती हैं। स्त्रियाँ

पुरुषों की अपेक्षा अधिक कोमल, आलस्यप्रिय तथा जीभ की गुलाम होती हैं। फलतः उनका पित्त जल्दी बिगड़ जाता है या उसकी गति बढ़ जाती है।

खान-पान नशीली वस्तुओं का सेवन तथा औषधियों का अधिक व्यवहार पथरी के बनने में सहायक होते हैं।

कुछ डाक्टरों के मत से कमर पर कसकर कमरबन्द बाँधते रहने से भी पित्त की गति में रुकावट आती है। गरीब घरों की स्त्रियों की अपेक्षा धनाढ्य घरों की स्त्रियाँ पथरी रोग से अधिक प्रभावित होती हैं। इसी प्रकार मोटे व्यक्ति पतले व्यक्तियों की अपेक्षा पथरी-रोग से अधिक आक्रान्त देखे गये हैं। यह रोग १५ वर्ष या उससे नीचे की आयुवाले व्यक्तियों को कम देखा जाता है। इस रोग के ७५ प्रतिशत रोगी ३० से ६० वर्ष की आयुवाले होते हैं। ४० से ४५ वर्ष की आयुवाले व्यक्तियों को यह रोग अधिक होता है। अनुभव में यह भी पाया है कि सगर्भाओं की अपेक्षा बन्ध्याओं में यह रोग अधिक मिलता है। आधुनिक विज्ञानशास्त्रियों का मत है कि पित्त की पथरी कई तरह के कीटाणुओं के कारण बनती है। लेकिन इसे वे लोग अभी तक सिद्ध नहीं कर सके हैं, कारण जब जीवित शरीर में उन लोगों ने कथित पथरी-रोग के कीटाणु इन्जेक्शन द्वारा दाखिल किये तो वे उस शरीर में पथरी न पैदा कर सके। जाहिर है उनकी 'कीटाणु-थिअरी' नितान्त थोथी और बेमानी है।

कई बार यह देखा गया है कि पथरी-रोग टायफायड ज्वर आने के बाद पनपा करता है और कभी-कभी पथरियाँ तो अतिशीघ्र भी बन जाती हैं। एक बार टायफायड के एक रोगी के पित्ताशय में ६८ दिन के अन्दर ही १/८ तथा १/४ अंगुल व्यास की दो पथरियाँ आपरेशन द्वारा निकाली गयीं।

पथरी-रोग के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि पथरियाँ न केवल पित्ताशय में ही बनती हैं, अपितु पित्त-संस्थान में कहीं भी बन सकती

हैं, जहाँ पित्त का आवागमन होता रहता है। अक्सर पथरियाँ यकृत की छोटी

पित्त-वाहिनियों में बनती हैं । ये पथरियाँ प्रायः इतनी सूक्ष्म होती हैं कि बिना खुर्दबीन के देखी नहीं जा सकतीं । बहुत मुमकिन है कि अपने शरीर में ऐसी पथरियों को धारण करनेवाले लोगों को उनका पता ही नहीं और साधारणतः वे उन्हें निकालते भी रहते हों, बिना जाने और बिना रोग-लक्षण प्रकट हुए ।

पथरी-रोग के लक्षण

पथरी-रोग की प्रारम्भिक अवस्था में प्रायः अरुचि और अपच के लक्षण प्रकट होते हैं । लेकिन ये लक्षण स्थायी नहीं होते, बीच-बीच में कुछ दिनों के लिए अदृश्य भी हो जाते हैं । पित्ताशय में वेदना का होना ही इस रोग का प्रधान लक्षण है। जब कोई पथरी पित्ताशय से निकलकर उसकी सँकरी नली में आकर अटक जाती है तो उस समय असह्य वेदना होती है। रोगी छटपटाने लगता है और कभी-कभी तो मूर्च्छित भी हो जाता है। जनसाधारण इसी अवस्था को यकृत-शूल, दर्देजिगर , पित्ताशय-शूल (Hepatic colic), तिब्ब में 'कुंजल कबदी' तथा डाक्टरी में Biliary colic कहते हैं ।

पित्त की पथरियाँ पित्ताशय, पित्ताशय की प्रणाली या साधारण पित्त-नलिका आदि विभिन्न स्थानों में स्थित होकर भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न करती हैं । जब तक पथरी पित्ताशय में पड़ी रहती है, तब तक उसकी उपस्थिति का कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होता। केवल कभी-कभी पार्श्विक रेखा पर दबाने से थोड़ी वेदना प्रतीत होती है। लेकिन जब पथरी पित्ताशय से निकलकर पित्ताशय-प्रणाली में पहुँचती है तो अचानक दर्द शुरू हो जाता है। तभी रोगी समझता है कि यह पथरी का दर्द है । पीड़ा बायीं ओर से पार्श्विक रेखा के नीचे से आरम्भ होती है, जिसकी लहर आमाशय की ओर यानी ऊपर की ओर जाकर दाहिने कन्धे की ओर चढ़ती मालूम पड़ती है। इसे referred pain कहते हैं। वमन होने के साथ यह पीड़ा शान्त भी हो जाती है। कभी-कभी पित्त-प्रणाली में पथरी के २-४ घण्टे रहने तथा तीव्र वेदना होने

पर 'कामला' हो जाता है, जो थोड़े दिनों में ही शान्त हो जाता है। कामला इसलिए हो जाता है कि पथरी की उपस्थिति में पित्त-प्रणाली की दीवारों पर प्रदाह उत्पन्न हो जाता है, जो बढ़कर पित्त-स्रोतों तक पहुँच जाता है, जिससे पित्त के प्रवाह में रुकावट पड़ जाती है।

यह आवश्यक नहीं कि पथरी की वेदना कई दिनों तक चलती रहे। अक्सर यह वेदना दौरे के रूप में एक सप्ताह या एक मास तक बन्द रहकर हुआ करती है और दो दौरों के बीच रोगी अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करता है।

जब पथरी पित्ताशय में न होकर पित्त-प्रणाली यानी पित्त-नलिका में होती है, तब भी लक्षण प्रायः एक-से ही होते हैं। किन्तु वेदना के स्थान-भेद तथा कामला की उत्पत्ति आदि कृत थोड़ी भिन्नता रहती है। ऐसी हालत में वेदना ऊपरी जठर-प्रदेश में होती है और दाहिनी ओर जाने के बदले बायीं ओर जाती है, साथ ही नाभि के ठीक नीचे दबाने पर अधिक दर्द होता है। यदि पथरी अधिक बड़ी हुई, साथ ही नलिका में प्रदाह हुआ तो पित्त-प्रवाह रुककर कामला हो जाता है, जो बहुत कष्टकर होता है।

पथरी-रोग की साधारण दशाओं में रोग को समझना सरल है, किन्तु जब कई उपद्रव साथ-साथ होते हैं तो अनेक लक्षणों के एक साथ उत्पन्न हो जाने से बड़े-बड़े अनुभवी चिकित्सक भी रोग को समझ नहीं पाते और घबड़ा जाते हैं। फिर भी सावधानी से पीड़ा के स्थान-विशेष तथा वेदना की गति एवं दशा का निरीक्षण करने से रोग समझ में आ जाता है। जिस स्थान पर दबाव डालने से रोगी चिल्लाने, चीखने लगे, वहीं पर पथरी की स्थिति समझनी चाहिए। किन्तु शोथ होने पर वेदना होती है, पर वह वेदना उतनी तीव्र नहीं होती, जितनी कि पथरी की वेदना।

यदि पथरी पित्त-प्रणाली में फँसी होगी और उसकी वजह से मार्ग पूर्णत अवरुद्ध हो गया हो, तो प्रचण्ड कामला का होना अवश्यम्भावी है।

पित्त की पथरी एक्सरे की साधारण फोटो पर नहीं पकड़ी जा सकती । उसे पकड़ने के लिए एक विशेष उपाय करना पड़ता है । वह यह कि एक्सरे प्लेट लेने के पहले रोगी को एकाध रंग खिलाया जाता है । यह रंग जब जिगर में से छनकर निकलता है, तो पथरी को रंग देता है, जो एक्सरे फोटो पर काला दाग बनकर आता है ।

किसी-किसीकी पेशाब के साथ सूक्ष्म पथरियाँ बराबर निकलती रहती हैं । किन्तु उसे पता नहीं चलता कि उसके पित्ताशय या मूत्राशय में पथरी बन चुकी है या बन रही है। उसे प्रायः वर्षों दर्द नहीं होता ।

यदि पित्ताशय में पथरी बनी होती है तो पेडू का आकार बढ़ जाता है । उसकी दीवारें भी मोटी हो जाती हैं । पित्ताशय के भीतरी-भाग में पित्त और कफ जमा हो जाता है । पेट में आफारा आता है । थोड़ा भी खाने से पेट फूल जाता है । अजीर्ण,कब्ज, कलेजे की जलन, गैस, खट्टी डकार, सिर-दर्द, मतली, मन्दाग्नि आदि लक्षण भी पथरी-रोग में प्रकट होते हैं। रोग की बढ़ी अवस्था में दाहिनी तरफ की पसलियों के नीचे नाभि तक बोझ-सा मालूम होता है, भूख बन्द हो जाती है। भोजन से अरुचि हो जाती तथा जाड़ा-बुखार आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं ।

पथरीजन्य शूल का तात्कालिक उपचार

दुर्भाग्य की बात है कि पथरीजन्य शूल आरम्भ होते ही डॉक्टर लोग रोगी को आमतौर से दर्द को खत्म करने के लिए Anodynes यानी दर्द बन्द करनेवाली दवाएँ , जैसे अफीम या मार्फिया आदि दे देते हैं, जिससे कुछ समय के लिए दर्द तो बन्द हो जाता है, परन्तु दर्द का कारण पथरी अपने स्थान पर ही बनी रह जाती है, जिसके बिना निकले दर्द स्थायी रूप से बन्द हो ही नही सकता । उल्टे दर्द बन्द करनेवाली दवाइयों से शरीर में विष की मात्रा में और वृद्धि हो जाती है जिससे रोगी की अवस्था और भी खराब हो जाती है । रोग

दिनोंदिन पुराना पड़ता तथा जटिल होता जाता है। जो डॉक्टर पथरीजन्य शूल की अवस्था में दर्द खतम करने के लिए दर्दनाशक विषैली दवाइयाँ देने के पक्षपाती हैं, वे जानते हैं कि ऐसी दवाइयों से मात्र दर्द के स्थान एवं उससे सम्बद्ध नाड़ियों को अस्थायी रूप से लकवा मार जाता है और वे सुन्न हो जाती हैं। इससे वास्तव में दर्द होना बन्द नहीं होता, दर्द का अनुभव बन्द होता जाता है, जिसे भूल से डॉक्टर और रोगी दोनों दर्द खत्म होना समझते हैं ।

वास्तव में पथरी के दर्द का दौरा होने पर उपाय यह होना चाहिए कि पित्ताशय-संस्थान में जो पथरी फँसी और अटकी है, और जो दर्द का कारण है, वह किसी तरह बाहर आ जाय । इस काम के लिए रोगी को तुरन्त एक बड़े टब में गरम पानी भरकर उसमें बैठने से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है । पानी रोगी के सहने लायक गरम होना चाहिए तथा रोगी जब तक पानी में रहे, पानी एक-सा गरम हो । इसलिए जब टब का पानी ठंढ़ा होने लगे, तो उसमें से थोड़ा पानी निकालकर उतना ही गरम पानी उसमें डालते रहना चाहिए । रोगी के सिर पर ठंडे पानी से भींगी एक पट्टी या गमछा अवश्य रख देना चाहिए और उसे सदैव ठंडा रखना चाहिए । टब में रोगी को उस समय तक रखना चाहिए, जब तक कि दर्द शान्त न हो जाय । दर्द शान्त हो जाने के बाद टब से निकलने पर यदि पुनः दर्द शुरू हो जाय तो उसे पुनः टब में वापस लौट जाना चाहिए। रोगी को गरम पानी के टब में आधा घण्टा या कभी-कभी इससे अधिक देर तक भी रहना पड़ सकता है ।

दौरा होने के पूर्व दर्द के लक्षण प्रकट होते ही गरम पानी का एनिमा देकर गरम जल का एक कटि-स्नान या पूरे शरीर का भाप-नहान दे देने से रोगी को भारी राहत मिलती है।

रोगी के कमरे में वायु का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए। जब तक रोगी की सारी तकलीफ दूर न हो जाय, उसे उपवास करना चाहिए । यदि रोगी को

मतली हो तो जब तक मतली बन्द न हो जाय, तब तक उसे पानी भी नहीं देना चाहिए । उसकी जगह बर्फ का टुकड़ा चूसने को दिया जा सकता है । रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए और किसी प्रकार की औषधि का सेवन न करना चाहिए । तकलीफ कम न होने तक हाथ-पाँव को गरम रखना चाहिए । गहरी साँस लेनी चाहिए । गरम जल या जैतून का तेल एक-एक चम्मच कागजी नीबू का रस मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देर बाद पीते रहना चाहिए । जिस अवस्था में आराम मिले, उसी अवस्था में लेटकर आराम करना चाहिए। दर्द की अवस्था में ५वें से ९वें मोहरे तक मेरुदण्ड की मालिश करनी चाहिए, ताकि पित्ताशय को नियन्त्रण करनेवाली वात-नाड़ियों को शक्ति मिले । मसाने की भी मालिश करनी चाहिए, ताकि वहाँ संचित रक्त प्रवाहित हो जाय । अवस्था गम्भीर होने पर सिर्फ नीबू मिला गरम पानी पीना चाहिए । दर्द मिट जाने पर कम-से-कम एक सप्ताह तक केवल फलों का रस या रसदार फल लेने चाहिए ।

यदि किसी कारण दर्द की अवस्था में रोगी को गरम पानी के टब में रखा न जा सके या उसे हृदय, वृक्क तथा धमनी का भी विकार हो, या वह वृद्ध या बहुत कमजोर हो, तो ऐसे रोगी के लिए गरम सेंक ठीक रहेगी । एक मोटा सूती या ऊनी कपड़ा गरम पानी में भिगोकर और निचोड़कर पित्ताशय के सामनेवाले भाग अर्थात् नीचे की पसलियों और उदर के ऊपरवाले पूरे भाग पर रखना चाहिए । उसकी गरमी बनाये रखने के लिए उस पर सूखा ऊनी कपड़ा लपेट रखना चाहिए। इस पट्टी को थोड़ी-थोड़ी देर के अन्दर बदलते रहना चाहिए। गर्मी बनाये रखने के लिए गरम पानी की बोतल भी काम में लायी जा सकती है । इस प्रकार ताप का प्रयोग करने से शरीर के तन्तु ढीले पड़ जाते हैं, दर्द कम हो जाता है और पथरी आसानी से निकल जाती है ।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सक उपर्युक्त प्रयोग के लिए केवल गरम पट्टी देने

के स्थान पर गरम-ठंडी पट्टी देने की राय देते हैं। अर्थात् ५ मिनट तक गरम सेंक देने के बाद आधा मिनट तक ठंडी सेंक तथा खूब ठंढे गमछे से उस स्थान को २० से ३० मिनट तक पोंछना और अन्तिम बार १० मिनट बर्फ या खूब ठंढे पानी की पट्टी का प्रयोग करना आवश्यक बताते हैं । उनके मत से दर्द रहने तक इसी प्रकार २-३ घण्टे तक पित्ताशय और यकृत पर गरम-ठंढा प्रयोग करना चाहिए । इसके अतिरिक्त बार-बार रोगी के पेट और पीठ की चारों तरफ घुमाकर उष्ण-गीली लपेट भी देना आवश्यक है । भीतर का भीगा कपड़ा खूब अच्छी तरह निचोड़ा होना चाहिए और उसके ऊपर काफी मोटा, सूखा ऊनी कपड़ा लपेटा होना चाहिए । यह पट्टी दो घण्टे तक लगी रह सकती है और आवश्यकतानुसार हर बार गरम-ठंढा प्रयोग के आधे घण्टे बाद व्यवहार में लायी जा सकती है । यदि रोगी को ज्वर भी हो, तो उसके सिर को अच्छी तरह ठंढे पानी से धोकर दिन में तीन बार गीली तौलिया द्वारा उसका शरीर पोंछ देना चाहिए ।

पथरी-रोग की असह्य वेदना होने पर २ छटाक जैतून के तेल में १ नीबू का रस मिलाकर आध-आध घण्टे पर दो घण्टे तक देते रहना चाहिए। साथ ही दर्द के स्थान पर सतत गरम सेंक देने से पथरी चौबीस घण्टे के अन्दर बाहर निकल आती है ।

साधारण दर्द होने पर गरम पानी ही पीकर उसे दूर किया जा सकता है । तरकीब यह है : एक सेर गरम पानी में २ माशे नमक मिलाकर और एक नीबू का रस निचोड़कर सुबह तड़के गरम-गरम पी लिया जाय। उसके दस मिनट बाद १ सेर गरम पानी इसी तरह और पिया जाय । तत्पश्चात् ३-३ घण्टे पर एक सेर गरम पानी इसी तरह लिया जाय , जब तक कि दर्द बिलकुल शान्त न हो जाय । इस बीच कुछ और खाया-पीया न जाय ।

जब पथरी साधारण रूप से बड़ी हो और वह किसी प्रकार निकलने का

नाम न लेती हो, साथ ही जब रोगी के जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो, केवल तभी शल्य-चिकित्सा की बात सोचनी चाहिए , अन्यथा पथरी के दर्द का ही एकमात्र इलाज शल्य-क्रिया समझकर उसका व्यवहार रोग की प्रत्येक दशा में नहीं करना चाहिए क्योंकि दरअसल शल्य क्रिया से पथरी-रोग का मूल कारण दूर नहीं होता, फलतः और पथरियों का बनना जारी रहता है, बन्द नहीं होता ।

रोग का स्थायी उपचार

पहले बताया जा चुका है कि पित्ताशय के संस्थान में पित्त के पथरी बनने के केवल दो प्रधान कारण हैं : पहला कब्ज और दूसरा खान-पान-सम्बन्धी असंयमजन्य पेट की खराबी । अतः इन दोनों कारणों से उपस्थित शरीर की अस्वस्थता दूर कर देना ही इस रोग का सही और स्थायी उपचार है । जब पित्ताशय पूरे तौर पर अथवा पर्याप्त रूप से खाली नहीं हो पाता, प्रायः तभी पित्ताशय में पथरी की उत्पत्ति होती है । अतः इस तथ्य को रोग का तीसरा कारण समझना चाहिए। इसलिए पित्त की थैली हमेशा भरी ही न रहे, कभी-कभी खाली भी हो जाया करे। उपचार में इस बात की व्यवस्था विशेष रूप से होनी चाहिए । इसके लिए रोज पेडू पर एक बार गरम-ठंढी सेंक देकर ठंढे पानी का एनिमा लेना चाहिए । इस प्रयोग से पित्त की थैली सिकुड़ेगी, फलतः पित्त थैली के बाहर हो जाया करेगा । पेडू पर गरम-ठंढी सेंक देते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह पित्त की थैली यानी पित्ताशय के पूरे घेरे पर हो । उसके बाद पूरे पेट,पेडू और यकृत पर कपड़े की उष्ण पट्टी पीठ के निचले भाग की तरफ से घुमाकर लगानी चाहिए। एक घण्टे के लिए इस लपेट से उसके नीचे के सभी अवयव, जो पित्ताशय से संबद्ध होते हैं, सबल बनते हैं और अपना-अपना क़ाम स्वाभाविक ढंग से करने लगते हैं। फलस्वरूप पित्ताशय से पित्तस्राव भलीभाँति होने लगता है और पित्त वहाँ

रुककर पथरी का रूप धारण नही करने पाता। साथ ही इस रोग में पित्ताशय में जो प्रतिश्याय के कारण श्लेष्मायुक्त अवस्था रहती है, जो इसके भीतर पथरी बनने की अवस्था का गठन करती है, वह पूर्णरूपेण दूर हो जाती है। उपर्युक्त प्रयोग के अतिरिक्त शरीर को निर्दोष करने के लिए रोज कुछ देर तक धूप-स्नान या १० मिनट का पाँव का गरम नहान लेकर ठंढे जल से साधारण स्नान कर लेना चाहिए। इसके बाद समूचे शरीर की सूखी मालिश करें, ताकि शरीर थोड़ा गरम हो जाय। ७वें या १५वें दिन जैसी अवस्था हो, भाप-नहान या गीली चादर का लपेट भी लगाना आवश्यक है। उपचार-काल में प्रतिदिन नियमित रूप से थोड़ी देर व्यायाम, कुछ मिनट यकृत का मालिश तथा साँस की कसरत करना भी उपकारी होता है। इन उपायों से भी पित्त-स्राव में तेजी आ जाती है। यदि पथरी का रोगी स्थूलकाय हो या घोर कोष्ठबद्धता का शिकार हो, तो नीचे का उपचार क्रमशः लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

रोग की प्रबलता के अनुसार सर्वप्रथम २-४ दिनों का उपवास करना चाहिए। उपवास के दिनों में सिर्फ ठण्ढे या गरम जल में नीबू का रस डालकर देना चाहिए। दो वक्त या एक वक्त गुनगुने पानी का एनिमा लेना चाहिए, सुबह शौच के बाद और शाम को सोने जाने के कुछ देर पहले। इसके बाद ३ दिनों तक केवल रसदार फलों का आहार करना चाहिए। प्रातःकाल या रात को सोने से पहले एक गिलास गरम जल में एक नीबू का रस मिलाकर पीना चाहिए। अपने-आप खुलासा पाखाना न हो तो प्रातः शौच के बाद एनिमा लेना चाहिए। तत्पश्चात् ३ दिनों तक फलाहार के साथ धारोष्ण दूध, मट्ठा या दही का घोल जो मुआफिक पड़े लेना चाहिए। उपचार—सुबह गरम-ठंढा कटिस्नान, तीसरे पहर पेडू और यकृत पर उष्ण-गीली लपेट आधा या एक घण्टा तथा रात को कमर की गीली लपेट रातभर के लिए लगानी चाहिए।

प्रतिमाह दो बार पूरे शरीर को भाप-नहान भी आवश्यकतानुसार लेना चाहिए।

चूँकि खान पान गलत होने से ही शरीर में पथरी का निर्माण होता है, इसलिए पथरी-रोग के उपचार में सही खान-पान पर जितना भी जोर दिया जाय, थोड़ा है। इस रोग में दूध, मलाई, पनीर आदि चिकनाईवाले पदार्थों से परहेज नितान्त आवश्यक है। रोग का जोर कम हो जाने पर रोगी अल्प मात्रा में मक्खन ले सकता है, इस रोग में ताजा फल, ताजी साग-सब्जियाँ, मलाईरहित मट्ठा, मधु ,सलाद तथा सूप लेना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा कर काफी पानी पीना चाहिए । मांस, मछली, अण्डा, दालें, सूखे मेवे आदि कदापि न लिये जायँ। सप्ताह में एक दिन उपवास रखा जाय। रोगी बाद को चोकरदार आटे की रोटी और माड़सहित भात ले सकता है। कच्ची सब्जियों का कच्चा रस लिया जा सकता है। तली-भुनी चीजें हरगिज नहीं लेनी चाहिए। हल्दी के अतिरिक्त सब प्रकार के मसाले, चाय, चीनी, कॉफ़ी, नशे की चीजें आदि उत्तेजक खाद्य पदार्थों को तो पथरी के रोगी को छूना भी नहीं चाहिए। ०

: २ :

मूत्राशय की पथरी

मूत्र एवं मूत्र-यंत्र संस्थान

कमर की अन्तिम छोर पर रीढ़ की दाहिनी ओर बायीं चर्बी में गड्ढेदार सेम के आकार के दो अवयव होते हैं, जिन्हें 'मूत्र-यन्त्र' , 'मूत्रपिण्ड' , 'गुर्दे', 'वृक्क', या अंग्रेजी में 'किडनी' कहते हैं । ये गुर्दे छाल जैसे आवरण के बने और नरम चर्बी से ढँके होते हैं । इनमें मज्जा जैसा पदार्थ भरा रहता है। गुर्दों पर गेंद जैसे लाखों पिण्ड होते हैं, जो उन्हें भीतर की ओर दबाते हुए चिपके रहते हैं। प्रत्येक पिण्ड से एक-एक सूक्ष्म नलिका निकलती है, जो आगे बढ़कर घोड़े की नाल की शक्ल बनाती हुई गुर्दों के केन्द्र में घुस जाती है। दूसरा सिरा घुमाव के साथ मूत्र-नलिका की ओर बढ़ती है। इस प्रकार की लाखों सूक्ष्म नलिकाएँ मूत्र-नलिका में फैले हुए मुँह से जा मिलती हैं । प्रत्येक गुर्दे से एक नली निकलकर मूत्राशय और ब्लैडर में मिलती है। प्रत्येक गुर्दे की लम्बाई ४-५ इंच, चौड़ाई २-२।। इंच तथा मोटाई १ इंच होती है। इसका रंग बैगनी और वजन आध पाव के लगभग होता है। इन गुर्दों का निर्माण 'नेफ्रोन' नामक घटकों से हुआ है। 'नेफ्रोन' छन्ना को कहते हैं। रक्त-स्थित गंदगी और विषों के छानने का कार्य गुर्दों में रहनेवाले ये ही छन्ने करते हैं । ये इतने छोटे-छोटे होते हैं कि खुर्दबीन के सिवा नंगी आँखों से नहीं देखे जा सकते। ये कुण्डलीक केशिकाओं की तरह रहते हैं । सूक्ष्म होते हुए भी यदि इनमें से किसी एक को फैला दिया जाय, तो रबड़ की तरह फैलकर एक इंच के करीब लम्बा हो जाता

है। ये सभी छन्ने और गुर्दे अक्सर अस्त-व्यस्त हो जाया करते हैं। अगर शरीर स्वस्थ रहे, तो ये अंग बड़ी ईमानदारी और खूबी से अपना काम करते हैं।
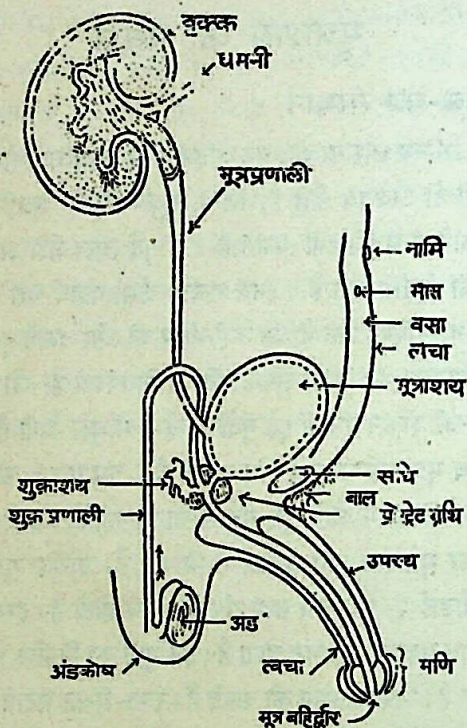
मूल-यन्त्र-संस्थान

लेकिन शरीर के रोगी हो जाने पर इन अंगों पर शरीर की सफाई का बहुत अधिक भार पड़ जाने के कारण ये अस्त-व्यस्त, क्षतिग्रस्त और रोगी हो जाते

हैं। वैसे इन अंगों को प्रकृति ने बहुत मजबूत बनाया है, क्योंकि इनका काम जीवन की सुरक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। किन्तु यदि शरीर के किसी भाग में लगातार तनाव रहे अथवा किसी अंग में उसके विषाक्त होने की स्थिति उत्पन्न हो जाय, तो इनकी रासायनिक परिवर्तन का कार्य करने की शक्ति घट जाती है और कभी-कभी तो बिलकुल नष्ट हो जाती है। यह भी बात है कि जब तक शरीर में आपात की स्थिति उत्पन्न नहीं हो जाती, तब तक इन अंगों में क्षतिग्रस्त होने का पता ही नहीं लगता ।

गुर्दों के 'नेफ्रोन' या छन्ने मूत्रोत्पादन कार्य करते हैं सही, फिर भी एक ही समय सबके सब छन्ने कार्यरत नहीं होते। सामान्य स्थिति में एक समय इनकी चौथाई संख्या ही मूत्रोत्पादन का कार्य करती है और शेष छन्ने आराम करते हैं । अर्थात् उस समय उनके भीतर रक्त का संचार बिलकुल मामूली होता है। इस प्रकार बारी-बारी से ये छन्ने कार्यरत होते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि साधारणतः एक स्वस्थ व्यक्ति का एक वक्त केवल आधा गुर्दा काम करता है और आधा आराम।

मूत्राशय को जिसमें मूत्र जमा रहता है, मसाना, वस्ति तथा अंग्रेजी में urinary bladder कहते हैं । यह पेडू में जननेन्द्रियों के ऊपर होता है और पेडू के पिछले भाग से त्रिकोण बनाता है। इसके अगले भाग में हड्डी और पिछले भाग में दण्डक होता है जब इसमें मूत्र अधिक भर जाता है तो यह फूलकर नाभि तक पहुँच जाता है। स्त्रियों का गर्भाशय और योनि दण्डक और मूत्राशय के बीच रहती है। मूत्राशय के ऊपर आँत होती है। पूरे मूत्राशय में स्नायु-तन्तुओं का जाल फैला होता है, जिससे उसमें आकुंचन-शक्ति आ जाती है। जब गुर्दों में रक्त प्रवाहित होता है तो मल को छान लेते हैं । वही तरल मल गुर्दों से 'पेशाब' के नाम से नालियों की राह बूँद-बूँद करके मूत्राशय में जमा होता रहता है और वहाँ से मूत्रेन्द्रिय द्वारा शरीर के बाहर निकल जाता

है। नालियों में ऐसे ढँकने लगे होते हैं कि मूत्र मूत्राशय में पहुँचने के बाद लौटकर गुर्दों में नहीं जा सकता। मूत्राशय में लगी मूत्रवाली नली के सिरे पर एक गोल-सी चीज लगी रहती है, जो मूत्र को हर वक्त बहने से रोके रखती है। मूत्र करने की हाजत होने पर मूत्र करते समय यह गोली हट जाती है, साथ ही मूत्राशय सिकुड़ता है, तब मूत्रविसर्जन होता है। प्रत्येक गुर्दे से मूत्राशय तक जानेवाली नली की लम्बाई ९ से १६ इंच तक होती है। इनका ऊपर का शिरा कुछ फैला रहता है जिसे 'वृक्कालिंद 'कहते हैं । भीतर की ओर यह आलिंद दो-तीन भागों में विभक्त होकर अन्त में ८ से १२ भागों में विभक्त होता है, जिसे 'आलवाल' कहते हैं । इन आलवालों में असंख्य छन्नों से छना मूत्र बूँद-बूँद कर बराबर आता रहता है। गुर्दे से मूत्राशय तक जानेवाली उपर्युक्त नली का नीचे का शिरा मूत्राशय की दीवार को तिरछा छेदकर उसके भीतर खुलता है और ऊपर से आया मूत्र मूत्राशय में चला जाता है।

मूत्राशय से शिश्न के अन्त तक जो मूत्र निकलने का मार्ग होता है, उसे 'मूत्र-मार्ग' कहते हैं। इसकी लम्बाई पुरुषों में ५ से ८ इंच होती है। इसके भीतरी मुख को 'अन्तर्मुख' कहते हैं और शिश्न के बाह्य भाग पर जो छिद्र होता है, उसे 'बाह्यमुख ' । इसके भीतरी हिस्से में इतनी जगह होती है कि पेन्सिल जा सके । स्त्रियों का मूत्र-मार्ग बहुत छोटा सवा इंच के लगभग होता है। इसका द्वार भग के पीछे और योनि-द्वार के आगे रहता है।

गुर्दों का कार्य : यह एक तथ्य है कि मानव-कौशल से निर्मित कोई भी छाननेवाला यन्त्र गुर्दों की बारीक बनावट और कार्य का मुकाबला नहीं कर सकता । शरीर के अन्य सारे अंगों से गुर्दों का महत्त्व बहुत अधिक समझा जाता है, क्योंकि वे ही शरीर की आन्तरिक अवस्था ठीक बनाये रखते हैं । हमारे शरीर में गुर्दों के कार्य की तुलना नगर का पानी साफ करनेवाले उस बड़े यन्त्र से की जा सकती है, जो निरन्तर उस पानी को साफ करने में लगा रहता

है, जो हमारे पीने के काम में आता है। कुछ इसी तरह का एक अद्‌भुत यन्त्र प्रकृति ने सारे गुर्दों में बैठा रखा है, जो शरीर की गन्दगी को, विशेषकर रक्त की गन्दगी को दिन-रात अनवरत रूप से साफ करता रहता है।

शरीर की आन्तरिक अवस्था को ठीक रखने हेतु गुर्दों के कार्य करने का एक खास ढंग होता है। समवर्त की क्रिया से उत्पन्न मूत्रिया, गंधक आदि मलों और रक्त में पहुँचे हुए विषाक्त तथा विजातीय पदार्थों को ग्रहण कर मूत्र द्वारा बाहर निकाल देना। लेकिन गुर्दों का यही एक कार्य नहीं है, जैसा कि आम तौर से समझा जाता है। उन्हें ऐसे ही महत्त्व के अन्य दूसरे कार्य करने पड़ते हैं जो निम्नलिखित हैं :

१. गुर्दे रक्त में बहनेवाले रस-प्लाज्मा के परिणाम और शरीर में मौजूद जल को नियमित रखते हैं। अगर हम अधिक परिमाण में जल ग्रहण कर लें तो गुर्दे मूत्र के रूप में उस अतिरिक्त जल का निष्कासन कर देंगे। लेकिन यदि अधिक पसीना निकलन, वमन या अतिसार से जल का अधिक अंश निकल जाय तो गुर्दे बहुत थोड़ी मात्रा में गाढ़े मूत्र का निष्कासन करेंगे।

२. गुर्दे क्षार का अनुपात भी बनाये रखते हैं। अगर रक्त में क्षार या अम्ल की अधिकता हो जाय तो गुर्दे उस अतिरिक्त क्षार या अम्ल को मूत्र के साथ बाहर निकाल देंगे। मांसादि खानेवाले मनुष्य का मूत्र अम्लमय होता है, क्योंकि प्रोटीन अम्ल का ही उत्पादक है। इसलिए आहार में प्रोटीन का जितना अधिक प्रयोग होगा, उतना ही मूत्र अम्लमय होगा। इसके विपरीत शाकाहार पर रहनेवाले मनुष्य के मूत्र में क्षार की अधिकता होगी।

३. गुर्दे पोषण के 'कलांतवहि' का दबाव नियंत्रित रखकर विद्युदणु का सन्तुलन कायम रखते हैं। कलांतवहि वह प्रक्रिया है, जिसमें कोई पदार्थ पतले घोल से निकलकर कला द्वारा अधिक गाढ़े घोल में प्रवेश करता है। इसी प्रक्रिया से पोषण का परमाणु रक्त से निकलकर प्रवेश द्वारा कोशाणु में

पहुँचता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि विद्युदणु ही पोषण के परमाणुओं को रक्त से लेकर कोशाणुओं में और फिर कोशाणुओं के मल को निकालकर रक्त में पहुँचाया करते हैं। कोशाणुओं के पोषण के कलांतवहि का दबाव और विद्युदणु का संतुलन दोनों आवश्यक है। गुर्दे ही विद्युदणु को घटा-बढ़ाकर यह कार्य करते हैं।

४. गुर्दे 'रेनिन' नामक एक पदार्थ का स्राव भी करते हैं। यह पदार्थ गुर्दों में रक्तभाराधिक्य की अवस्था ठीक रखता है, जो छानने की प्रक्रिया में आवश्यक होती है। यह पदार्थ शरीर का साधारण रक्तभार भी नियंत्रित रखने में सहायक होता है। यही कारण है कि शरीर में रक्तभार का आधिक्य होने पर गुर्दों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। कारण, आमतौर पर रक्त भाराधिक्य गुर्दों के विकार का सूचक होता है।

५. गुर्दों की छोटी ट्यूबों में प्रति मिनट रक्त से १२० बार क्यूबिक सेण्टीमीटर तरल पदार्थ निःसृत किये जाते हैं। तरल पदार्थ की इतनी मात्रा मूत्राशय में निःसृत हो तो वह उसमें समा नहीं सकती, पर गुर्दों में जो छोटी-छोटी ट्यूबें लगी रहती हैं, वे उस तरल पदार्थ का कुछ अंश शोषण कर उसे रक्त-प्रवाह में पुनः भेज देती हैं। यदि यह क्रिया न हो तो शरीर में सदा जल का अभाव बना रहता है, लेकिन मूत्राशय में एक मिनट में लगभग एक ही क्यूबिक सेण्टीमीटर तरल पदार्थ जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि १२० क्यूबिक सेण्टीमीटर में से शेष ११९ क्यूबिक सेण्टीमीटर तरल पदार्थ ट्यूबों द्वारा शोषित किये जाकर रक्त-संचार-मण्डल में वापस भेज दिये जाते हैं। शरीर में जितने दूषित पदार्थ होते हैं, उनकी अधिकांश मात्रा गुर्दे ही शरीर से बाहर निकालते हैं। शेष कुछ दूषित पदार्थ फेफड़े और आँतें निकालती हैं और कुछ शरीर की त्वचा पसीने के रूप में।

६. गुर्दे शरीर की किसी इन्द्रिय के संतुलन तथा अभाव को दूर करने के

लिए कुछ पदार्थ का स्राव करते हैं । गुर्दों पर जो ग्रन्थियाँ होती हैं , वे हार्मोन्स स्राव करके गुर्दों के स्रावों को नियंत्रित करती हैं । एक हार्मोन्स गुर्दों द्वारा शोषित किये जानेवाले नमक को नियंत्रित करता है। कभी-कभी ये वृक्क-ग्रन्थियाँ किसी कारण अपना काम सामान्य रूप से नही कर पाती, तो नमक उसका हार्मोन्स शोषित नहीं करता। फलतः शरीर का नमक नष्ट हो जाता है और नमक के नष्ट हो जाने के कारण शरीर गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त हो जाता है।

मूत्र और उसका परिमाण : गुर्दों के कार्य जो ऊपर लिखे गये हैं उनको करनेवाली गुर्दों की कोशाएँ आश्चर्यजनक सूक्ष्मभेदी होती हैं और परिवर्तनों का पता लगाकर वे रक्त के संगठन को स्वच्छ रखने का प्रयत्न करती हैं । इस परिवर्तन में जो उत्सर्जन होता है, वही मूत्र है। मूत्र में जल, यूरिया और नमक की मात्रा सर्वाधिक होती है। मूत्र में रक्तरस के घटक प्रोबोजिन स्नेह और शर्करा उत्सर्गिक नहीं होते ।

औसत दर्जे के प्रौढ़ व्यक्ति में गुर्दे एक से डेढ़ कार्ट तक मूत्र का स्राव करते है, पर यह मात्रा ग्रहण किये जानेवाले जल और त्वचा, फेफड़ों और आँतों से मल निकलनेवाले जल के अंश पर निर्भर रहती है।

मूत्र-संस्थान में पथरी का निर्माण

ऊपर बताया जा चुका है कि खून में जो विकारी द्रव्य एकत्र होते हैं , उनका अधिक भाग पेशाब के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। अब यदि पेशाब में विकारी द्रव्यों का अंश सामान्यतः जितना चाहिए, उतना या कुछ ही अधिक हुआ तो कोई हर्ज नहीं, पेशाब में घुल-मिलकर वह शरीर से बाहर हो जाता है। लेकिन वे द्रव्य यदि सामान्य से बहुत अधिक हुए तो जैसे नमक के घोल में नमक के दाने पडने लगते हैं , वैसे ही गुर्दे की भीतरी मूत्र-प्रणाली या मत्राशय में उन विपैले द्रव्यों के रस की ग्रहण महीन-महीन दाने बनने और

जमने लगते हैं। अथवा जैसे इंजन के ब्वायलर' में गन्दगी की पपड़ी जमने लगती है, वैसे ही उपर्युक्त अंगों में पपड़ी सी जमने लगती है। साधारणतः ये रेत-कण और छोटी-छोटी पपड़ियाँ भी पेशाब के साथ बाहर निकल जाती हैं, फिर भी कुछ अंश भीतर रुक जाते है और वे एक साथ मिलकर बड़ी पथरी या कंकड़ी का रूप धारण कर लेते हैं।

मूत्र-त्याग में आलस : जिस समय मूत्राशय पूरा-पूरा भर जाता है, उस समय मूत्र-त्याग की इच्छा होती है। तभी पेशाब करके उसे पूरी तौर से खाली कर देना चाहिए। अन्यथा वहाँ गन्दगी की तलछट जमती रहेगी और कालान्तर में वह पथरी का रूप ले लेगी। इस पर हमें विशेष ध्यान देना ही चाहिए और मल-मूत्र के वेगों को भूलकर भी नहीं रोकना चाहिए। यदि मूत्र-त्याग ठीक समय पर नहीं किया जायगा तो शरीरस्थ अन्य वस्तुओं के समान मूत्राशय में भी रासायनिक प्रक्रिया होने लगेगी और उद्वेग होगा। मूत्राशय में गर्मी बढ़ जायगी। फलस्वरूप जहाँ मूत्र का अंश भाप बनकर उड़ जायगा, वहीं विजातीय द्रव्य का ठोस भाग बाकी रह जायगा और उसमें परिवर्तन-क्रिया होने लगेगी। मूत्राशय में नमक एवं न घुलनेवाले अन्य ठोस पदार्थों के विविध रंगों के वे छोटे-छोटे रवे बाद में एक साथ जुड़कर छोटी-बड़ी पथरी या पत्थर का रूप धारण कर लेंगे। ये पत्थर या पथरियाँ सरसों के दाने से लेकर मुर्गी के अण्डे के बराबर तक हो सकती हैं। जब तक ये छोटी और सरसों के दानें के बराबर होती है, तब तक मूत्र के साथ जाने-अनजाने निकलती रहती हैं और किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती। किन्तु जब ये बड़ी हो जाती हैं और मूत्र के साथ बाहर निकलने का प्रयास करती हैं तो मूत्र-प्रणाली में अटककर 'दर्द-गुर्दा' (रेनल कालिक) पैदा कर देती हैं। इसीको पथरी-रोग या पथरी-रोग का दौरा कहते हैं। पथरी की तेज नुकीली धार नली की झिल्ली पर आघात पहुँचाती है और उसमें प्रदाह उत्पन्न

करती है, जिससे दर्द-गुर्दा और तेज हो जाता है और रोगी छटपटाने लगता है ।

कम पानी पीना : शरीर में मूत्रीय विषमता की अवस्था उत्पन्न हो जाने के कारण जब गुर्दों के रक्त-प्रवाह से शरीर के विकृत पदार्थ नहीं निकल पाते, तो शारीरिक रक्त और मूत्र दोनों विष से भर जाती हैं। फलतः पथरी-निर्माण की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है । गुर्दे रक्त को ऐसे बहुत-से विषैले पदार्थों से मुक्त किया करते हैं, जिनके शरीर में रह जाने पर उनसे पथरी बनना स्वाभाविक होता है । गुर्दे आहार और श्रम से उत्पन्न होनेवाले जिन विकारों को निकालते हैं, उनमें 'यूरिकाम्ल' मुख्य होता है । यह 'प्रोटीन' के शरीर में चलने से उत्पन्न होता है और शारीरिक श्रम जितना अधिक होता है, उतनी ही अधिक मात्रा में उसका निर्माण होता है । प्राकृतिक प्यास बढ़ाकर पानी के योग से इस विषैले पदार्थ को धो-धोकर शरीर के बाहर निकालने का उपाय करती रहती है । गुर्दों द्वारा उसके विसर्जन का यह कार्य अत्यावश्यक है, क्योंकि अगर यह शरीर में, विशेषकर मूत्र-संस्थान में रुक जाय तो वहाँ पथरी का सूत्रपात हो जायगा । बहुत कम पानी पीनेवाले लोग इस भयावह स्थिति के शिकार होते हैं । कुछ लोगों का कहना है कि प्यास लगने पर ही पानी पीना चाहिए ,पर यह भूल है। इस भ्रान्त सिद्धान्त का अनुसरण कर बहुतों ने अपने शरीर को क्षति पहुँचायी है और पथरी-रोग के शिकार हुए हैं । जिन्हें स्वास्थ्य-सम्बन्धी रहस्यों का ज्ञान नहीं, वे ही ऐसा कह सकते हैं । सच तो यह है कि यदि कोई ऐसा पदार्थ है, जो जीवन-धारण-सम्बन्धी क्रियाओं से उत्पन्न विष को धोकर साफ कर सके तो वह है केवल पानी । शरीरस्थित विष को धोने का कार्य पर्याप्त मात्रा में पानी पीने से ही हो सकता है। अगर हम इसमें त्रुटि करेंगे तो हमारे शरीर में दिनोंदिन विष और गन्दगी की मात्रा बढ़ती जायगी । तब हमें न केवल पथरी का रोग ही, बल्कि कोई भी रोग आक्रान्त कर सकता है । जो लोग कम-से-कम ढाई सेर या आठ गिलास पानी रोज

पीते है, उनके शरीर का प्रत्येक भाग धुल-धुलकर साफ हो जाया करता है, जिससे वे पथरी-रोग और अन्य कई रोगों से मृत्युपर्यन्त बचे रहते हैं।

गलत खान-पान : भोजन में अधिक मिर्च और मसाले का मिश्रण शरीर को विषाक्त कर देता है । भोजन में यदि मसाले डाले ही जायें तो बहुत कम और वे भी उत्तेजक तथा तेज न हों । नमक भी भरसक कम ही इस्तेमाल किया जाय अयुक्त आहार पथरी-रोग का एक बड़ा कारण है । सफेद चीनी, मैदे का बना खाद्य-पदार्थ, आलू ,हलुआ, पुड़ी, चाट आदि खाने की चाल आमतौर से देखी जाती है । तलना, भूनना, खाद्य पदार्थों को सड़ा-गलाकर अचार-खटाई के रूप में खाना बहुत चलता है। इस प्रकार के आहार में खनिज और विटामिनों का प्राय: अभाव रहता है । ये सब चीजें शरीर में विष की वृद्धि करनेवाली हैं , जो पथरी-निर्माण में सहायक होती हैं ।

जो लोग उपर्युक्त अहितकर आहार लेने के आदी नहीं है, बल्कि उसकी जगह पूर्णान्न ग्रहण करते हैं, अपने आहार का तीन-चौथाई भाग ताजा फलों, कच्ची तथा उबली तरकारियों का रखते है, दूध,दही, मट्ठा और मधु का विशेष रूप से सेवन करते हैं , उनका न तो रक्त विषाक्त हो पाता है और न उनके मूत्राशय में जल्दी पथरी ही बनती है ।

विटामिन 'ए' और 'सी' की कमी : "शरीर में 'ए' और 'सी' विटामिनों के अभाव में पथरी का निर्माण अवश्यम्भावी है," यह पथरी-रोग के विशेषज्ञ श्री जे० डब्ल्यू० जोशी का मत है । उन्होंने लिखा है: "मेरी यह मान्यता है कि पथरी एक अभावजन्य रोग है। पथरी के अन्य अनेक कारणों की अपेक्षा यह कारण सर्वाधिक विश्वसनीय है। मेरा विश्वास है कि विटामिन के अभाव के कारण गुर्दे की झिल्लियों पर सबसे अधिक प्रतिक्रिया होती है । इसके फलस्वरूप जब एक बार मूत्र की वर्गीकृत यांत्रिक प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है तो भौतिक रसायनशास्त्र के नियमानुसार पथरी का निर्माण

अवश्यम्भावी हो उठता है।"

गुर्दों और अन्य द्रव्य-निष्कासक अंगों के आवरण के रूप में जो कोशाणु होते हैं, उन पर विटामिन 'ए' का गहरा प्रभाव पड़ता है। मूत्र-नलिका को सक्रिय बनाये रखने के लिए विटामिन 'ए' की पर्याप्त मात्रा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। 'मैककेरिसन' ने चूहों पर भोजन के प्रयोग किये। उन्हें ९० दिनों तक विटामिन 'ए' रहित वस्तुएँ खाने को दी गयीं। इन दिनों उनके भोजन में मुख्य वस्तु गेहूँ की बनी चीजें रहती थीं। ९० दिनों के बाद चूहों में पथरी के लक्षण दिखाई देने लगे। उसके बाद डॉ० मैक कारमिक ने अनुसंधान द्वारा पता लगाया कि पथरी का निर्माण भोजन में विटामिन 'ए' के अभाव से ही नहीं होता, विटामिन 'सी' के अभाव से भी हो सकता है। उन्होंने पता लगाया कि जब भोजन में पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'सी' नहीं होता तो दाँतों पर पत्थर की पपड़ी जमने लगती है। ठीक इसी प्रकार उससे मूत्र-प्रणाली भी पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों से अवरुद्ध हो जाती है। अपने रोगियों के निरीक्षण से डॉ० मैक कारमिक को पता लगा कि गंदली पेशाब में जो फास्फेट एवं मूत्र-प्रणाली की भित्तियों के आवरणरूप श्लैष्मिक झिल्लियाँ वर्तमान रहती हैं, प्रमुखतः विटामिन 'सी' के अभाव से उत्पन्न होती हैं। विटामिन 'सी' की अत्यधिक मात्रा से कुछ ही घण्टों में उन्होंने पेशाब की यह गंदलाहट दूर कर देने में सफलता प्राप्त की। इस चिकित्सा-क्रम के दौरान उनके रोगियों ने उन्हें बताया कि उनके दाँतों पर जमा हुआ पत्थर जैसा पदार्थ भी साफ होता जा रहा है। नर्सों ने भी रिपोर्ट दी कि पहले पेशाब के जिन बर्तनों पर रोगियों के पेशाब से चूने की सफेद तह जम जाती थी, वह अब नही जमती।

डॉ० मैक कारमिक के इस सिद्धान्त की कि भोजन में पर्याप्त विटामिन 'सी' के रहने पर पथरी का निर्माण नहीं होता, पुष्टि अमेरिका में एकत्र किये गये हाल के आँकड़ों से भी होती है। अमेरिका में अब पथरी किशोर एवं

तरुण व्यक्तियों को न होकर प्रौढ़ों को होती है, इसका कारण मैक कारमिक ने बताया कि अमेरिकन माताएँ आजकल विटामिन 'सी' की उपयोगिता के निरन्तर प्रचार के कारण अपने बच्चों के भोजन में विटामिन'सी' युक्त पदार्थ रखना नहीं भूलतीं। जाड़ा हो या गर्मी शिशुओं एवं किशोरों को संतरे या टमाटर का रस पीना ही पड़ता है और उन्हें हरी तरकारियाँ एवं ताजे फल खाये बिना छुटकारा नहीं मिलता।

कुलजता : कुछ परिवारों में तथा कुलों में पथरी बनने की प्रकृति दिखाई देती है। यह प्रकृति विशेषतया यूरिक एसिड की पथरी में अधिक पायी जाती है। उसका मुख्य कारण उस परिवार का गलत भोजन होता है।

परम परावटुकता : आजकल गुर्दे की पथरी की उत्पत्ति में परावटुका की अतिक्रियाशीलता सर्वाधिक श्रेष्ठ कारण माना जाता है। कुछ पथरी-चिकित्सकों का यहाँ तक कहना है कि जब तक कोई दूसरा कारण या 'परावटुका' ग्रन्थि की निर्विकारिता सिद्ध नहीं होती, तब तक गुर्दों की पथरी के प्रत्येक रोगी में परावटुका-ग्रन्थि की अतिक्रियाशीलता का सन्देह करना चाहिए।

'परावटुका-ग्रन्थि' का सम्बन्ध रक्त-रसगत कैलशियम फास्फोरस के साथ होता है। जब यह ग्रन्थि अधिक कार्यशील होती है, तब कैलशियम फास्फोरस का वजन विषम होकर रक्तरस में चूने की अधिकता हो जाती है, जिससे मूत्र में उसका उत्सर्ग बढ़ जाता है। परिणामतः गुर्दे की पथरी उत्पन्न हो जाने की सम्भावना हो जाती है। इस विकृति से अधिकतर दोनों गुर्दों में कई पथरियाँ उत्पन्न होती हैं। किन्तु कुछ रोगियों में केवल एक गुर्दे में कई या केवल एक पथरी भी मिलती है। देखा गया है कि परम परावटुकता से पीड़ित रोगियों में ६० प्रतिशत तक पथरी पायी जाती है और पथरी-रोग से पीड़ित रोगियों में १० प्रतिशत यह विकृति पायी जाती है।

अधिक परिश्रम : अत्यधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम जैसे चिन्ता, अग्निमान्द्य आदि से मूत्र में कैलशियम फास्फोरस का उत्सर्ग बढ़कर वह पथरी की उत्पत्ति होने में सहायक होता है ।

मूत्र-दोष : मूत्र में उपस्थित रहनेवाले सब लवण, जिनसे पथरियाँ बन सकती हैं, अल्पजल विलेय होते हैं । इसलिए जब मूत्र अधिक गाढ़ा हो जाता है, तब ये लक्षण अविलेय होकर निस्सादित होने लगते हैं ।

मूत्र की प्रतिक्रिया क्षारी या अम्ल हो सकती है । जब प्रतिक्रिया बहुत अम्ल हो जाती है, तब यूरिक एसिड अविलेय होकर निस्सादित होता है । इस प्रकार मूत्र में श्लेष्मा द्रव्य का होना मूत्र-प्रवाह-मन्दता तथा मूत्र-संस्थान का उपसर्ग आदि सब प्रकार की पथरियों की उत्पत्ति के कारण हो सकते हैं ।

उपर्युक्त कारणों के अलावा बैठे-बैठे व्यवसाय करना, आरामतलबी, मद्य-सेवन, यकृत के विकार, गठिया-रोग तथा ल्यूकेमिया आदि भी पथरी-रोग के कारण होते हैं ।

रोग-लक्षण

जिस रोगी को मूत्राशय अथवा मूत्र-यन्त्र की पथरी का रोग हो जाता है, उसके शरीर में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं :

रोगी के उदर तथा कटि के अग्रभाग में अचानक दर्द उठता ही रहता है और अक्सर यह दर्द अत्यन्त असह्य हुआ करता है । यह दर्द जहाँ से उठता है, वहाँ से मूत्रवाहिनी नली की ओर तेजी से बढ़ता है । कभी-कभी रोगी का जी मचलता है, कभी-कभी कै भी हो जाती है। यह दर्द उसी समय होता है , जब पथरी मूत्र -प्रवाह में अटकती है और मूत्ररोध उत्पन्न कर देती है । हर बार दर्द के समय अक्सर पथरी अपना स्थान परिवर्तित कर नीचे की तरफ उतरती है। इस प्रकार प्रायः पथरी का स्थान परिवर्तित होता रहता है । इसलिए पथरी की

शरीर में सही स्थिति 'एक्सरे' लेने पर ही ज्ञात हो सकती है ।

पथरी के रोगी को यन्त्रणा के कारण कभी-कभी ज्वर भी आ जाता है और १०३°-१०४° तक पहुँच जाता है । कँपकँपी होती और पसीना भी आने लगता है । पथरी के रोगी को मूत्र-त्याग की बार-बार हाजत होती है। यह अवस्था उस समय होती है जब पथरी गुर्दे के नीचे आकर मूत्राशय में पहुँच जम जाती है । प्रत्येक बार अल्प मात्रा में मूत्र आता है । कभी बूँद-बूँद ही मूत्र उतरता है तो कभी मूत्र-त्याग कर लेने पर भी मूत्र-त्याग की इच्छा बनी रहती है। मूत्र त्यागने में कष्ट होता है, पर कभी-कभी जलन भी मालूम पड़ती है।

अक्सर पथरी की रगड़ से रक्त की महीन-महीन नलिकाएँ कट जाती हैं जिससे रक्त जम कर मूत्र के साथ बाहर निकलने लगता है । लेकिन यह कभी-कभी होता है । अक्सर रक्त कम ही निकलता है और कभी-कभी अधिक मात्रा में भी निकलता है । बड़ी पथरी से छोटी पथरी अधिक पीड़ादायक होती है ।

रोग की बढ़ी हुई अवस्था में पथरी के कारण रोगी के गुर्दे क्षतिग्रस्त होकर धीरे-धीरे नष्ट होने लगते हैं। अगर दोनों इस रोग से प्रभावित होकर नष्ट होने लगें तो रोगी का जीवन संकट में पड़ जाता है । उस वक्त रोगी की भूख हवा हो जाती है । शरीर की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है । शरीर में सूजन आ जाती है और अन्य भी कई प्रकार के विकार एवं उपद्रव घेर लेते हैं । मूत्र सही ढंग से नहीं बनता और उसका शरीर के बाहर निकलना भी कम हो जाता है ।

इस रोग में यह उल्लेखनीय है कि मूत्र-यन्त्र में पथरी दीर्घ काल तक रहते हुए भी किसी प्रकार वह लक्षण उत्पन्न नहीं करती, जिससे जाना जा सके कि इसे पथरी का रोग हुआ है ।

जब पथरी मूत्र-यन्त्र में दीर्घकाल तक फँसी रहकर यन्त्रणा देती है तो शरीर में मूत्र-विष व्याप्त होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

पथरी के निकलने के पहले मूत्राशय में अकरा आ जाता है। वह फूल या सूज जाता है। फेफड़े के पास दर्द होने लगता है। मूत्र में बकरे की पेशाब की-सी बदबू आने लगती है । पथरी के निकल चुकने पर नाभि में फोते के नीचे सीवन में तथा नाभि के नीचे की जगह मूत्राशय या पेडू के मुँह में दर्द होता है। मूत्र को बहानेवाले मार्गों के बंद हो जाने से मूत्र की धार बीच में ही फट जाती है यानी विच्छिन्न धार से पेशाब होती है। किसी समय पथरी के मूत्र-मार्ग से अचानक हट जाने पर गोमेद के समान आराम से पेशाब होती है। उस समय किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती ।

पथरी के दर्द का तात्कालिक उपचार

पथरी के दर्द के दौरे होते है, जिसे अंग्रेजी में 'रेनल कालिक' कहते हैं । इसमें कंप, दाँत पीसना, दर्द के मारे चिल्लाना, लिंग और नाभि को हाथों से दबाये रहना , पेशाब के समय खाँसने से अधोवायु के साथ मल निकल जाना यानी पेडू में सूई गड़ाने जैसी भयंकर वेदना या पीड़ा होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं ।

जब पथरी मूत्र-प्रणाली में आकर नीचे की ओर जाने लगती है, तभी पीड़ा होती है । जब पथरी बहुत छोटी होती है तो कम पीड़ा के साथ वह नीचे वीसत में चली जाती है, किन्तु मध्यम आकार की पथरी आसानी से नीचे नही जा सकती। उसकी रगड़ से अधिक पीड़ा होती है। यदि पथरी खरखरी और कँटीली होती है तो पीड़ा की कोई सीमा ही नही रहती । उस पीड़ा से मूत्र-प्रणाली में ऐंठन उत्पन्न होकर उसका मार्ग अधिक तंग हो जाता है, जिससे पथरी की रगड़ बढ़ती है। इससे असह्य वेदना होती है। जिसे वृक्कशूल या 'रेनल कालिक' कहते हैं। घोड़े, साइकिल, बैलगाड़ी, बस आदि

की सवारी करने, उछलने-कूदने या अधिक परिश्रम का काम करने से पथरी अक्सर मूत्र-प्रणाली में उतर आती है और कष्ट देने लगती है। जिस तरफ पथरी रहती है, दर्द का आरम्भ उस ओर की कटि में होता है और वहाँ से वह नीचे अण्डकोष की ओर चला जाता है । स्त्रियों में यह शूल भगोष्ठ की ओर फैलता है । कभी-कभी यह शूल और भी नीचे पैर के तलवों की ओर तक चला जाता है। शूल के कारण अण्ड़कोष फूला हुआ और नरम होकर ऊपर की ओर खिंच जाता है। कभी -कभी शूल पेट और छाती में फैलकर पीठ में प्रतीत होता है।

शूल के समय वमन होता है, काफी पसीना आता है और नाड़ी तेज तथा क्षीण हो जाती है। साँस तेज चलने लगती है और ज्वर १०२°-०३° तक हो जाता है। उस वक्त मूत्र कभी बूँद-बूँद टपकता है, कभी खुलकर अधिक निकलने लगता है तो कभी पूर्णतया बन्द हो जाता है।

पथरी के शूल का दौरा कुछ मिनटों से लेकर कुछ घण्टों तक और कभी-कभी एक दो दिनों तक भी रह सकता है।। अल्प अवधि के दौरे में शूल की तीव्रता एक-सी रहती है, किन्तु जब दौरा दीर्घकालीन हो जाता है, तब शूल बीच-बीच में अंशतः शान्त होकर फिर से उभरता है ।

दर्द उठने पर चारपाई पर पड़कर विश्राम करना चाहिए। फिर गरम पानी के टब में १०-१५ मिनट तक बैठना चाहिए। इससे दर्द कम हो जायगा और पथरी भी निकल जा सकती है। इस समय गरम पानी पीने या गरम पानी का एनिमा लेने से विशेष लाभ होता है। यदि दर्द दीर्घकाल तक बना रहे तो हर दो घण्टे पर गरम पानी का एनिमा लेते रहना चाहिए। यदि इतने उपचार से दर्द न मिटे, तो गरम-ठंढा कटिस्नान लेना चाहिए। साधारणतः इस स्नान को २-३ बार लेने से ही दर्द गायब हो जाता है। इसके अतिरिक्त दर्द की जगह और गुर्दों की जगह दिन में २ बार दीर्घतापयुक्त गरम पट्टी से १८ मिनट तक सेंक

देकर शेष समय के लिए कमर को गीली लपेट का प्रयोग करना चाहिए। दर्द दूर हो जाने पर भी कुछ देर तक इस सेंक और लपेट को जारी रखना चाहिए।

दर्द के समय उल्टी होती हो , जैसा कि बहुधा होता है, तो उस समय बर्फ के छोटे-छोटे टुकड़े रोगी चूस सकता हैं। पेट पर ठंढी गीली पट्टी बर्फ के पानी या घड़े के ठंडे पानी में भिगोये कपड़े की लपेट अथवा बर्फ की थैली का प्रयोग करने पर भी अक्सर उल्टी बन्द हो जाती है।

यदि रोगी की पेशाब बन्द हो जाय तो १० मिनट तक उसे पाँवों का गरम नहान लेना चाहिए। उसके बाद पसीना लानेवाला सूखा पैक एक घण्टा का लेकर घर्षण-स्नान करना चाहिए।

गुर्दों से रक्तस्राव होने की दशा में पाँवों की लपेट प्रयोग करके गुर्दों पर ठंडी पट्टी लगानी चाहिए।

यदि हृदय दुर्बल या उत्तेजित दशा में हो तो उसके ऊपर दिन में दो बार १५ से ३० मिनटों के लिए ठण्डे पानी की भीगी पट्टी बार-बार प्रयोग करनी चाहिए और हर बार पट्टी हटा लेने के बाद उस स्थान को रगड़कर लाल और गरम कर देना चाहिए।

रोग की स्थायी चिकित्सा

आयुर्वेद और हकीमी में पथरी एक असाध्य रोग समझा जाता है, एलोपैथिक में आपरेशन ही इसका एकमात्र इलाज है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इस महाघातक रोग से बिना ऑपरेशन के ही छुटकारा पाया जा सकता है।

पथरी के रोगी को लम्बे उपवास से आश्चर्यजनक लाभ होता है। लेकिन लम्बा उपवास बिरले ही रोगी कर सकते हैं। अतः साधारण रोगी के लिए एक सप्ताह का रसाहार, तीन सप्ताह का फलाहार और उसके बाद कुछ काल तक

भोजन-सुधार करने से पथरी सदा के लिए चली जाती है। प्रथम सप्ताह में रोगी को केवल नारंगी का रस लेना चाहिए। रसाहार और फलाहार-काल से दोनों समय मिट्टी की पट्टी पेडू पर आधा घण्टा रखकर गरम पानी का एनिमा देना चाहिए। दिन में तीन-चार बार मिट्टी की पट्टी दर्द के स्थान पर भी रखनी चाहिए। स्थानीय वाष्पस्नान १५ मिनट का एक दिन बाद करके देना जरूरी है। एक माह बाद रोगी को प्रातःकाल दो सन्तरे का रस, दिन में चोकरदार आटे की रोटी, पपीते की तरकारी और टमाटर, पुदीना आदि का सलाद यथेष्ठ मात्रा में देना चाहिए। शाम को सेव और सलाद देना चाहिए। इसके साथ ही दोनों समय एक सप्ताह तक ७ मिनट का कटि-स्नान लेना चाहिए। दूसरे सप्ताह में सुबह १५ मिनट तक मेहन-स्नान और शाम को १५ मिनट तक कटि-स्नान लेना चाहिए। स्नान के पश्चात् यथाशक्ति व्यायाम करना चाहिए। स्नानों का समय क्रमशः बढ़ाकर मेहन-स्नान आधा घण्टा तक तथा कटि-स्नान २० मिनट तक लेना विशेष लाभदायक होगा। सप्ताह में एक बार पूरे शरीर का वाष्पस्नान या सूर्यस्नान लेकर उसके बाद कटि-स्नान लेना चाहिए। रसाहार के समय पानी खूब पीना चाहिए।

फलाहार के समय जहाँ तक सम्भव हो सेव, नारंगी, अनार, नीबू, और खरबूजा सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। 'खरबूजे का कल्प' पथरी पर अचूक होता है। यदि संभव हो तो फलाहार-काल में एक ही प्रकार का फल लिया जाय।

इस रोग में नीबू का रस मिला पानी रोज अधिक-से-अधिक पीना चाहिए। इससे एक तरफ पथरी का बनना रुकेगा और दूसरी तरफ उसका घुलकर शरीर के बाहर निकलना भी प्रारम्भ हो जायगा।

इस रोग में नारियल, ताड़, और खजूर का मीठा रस (ताड़ी), साग-सब्जियों का रस, दूध, कच्चा मखनिया दूध, मट्ठा दही का तोड़, सुबह

ताजे दूध में जल मिलाकर पीना, दशा सुधरने पर छेना, मक्खन, तरबूजा, खीरा, ककड़ी, गूलर, पका केला, कुरथी का पानी, शहद, मेवे आदि उपकारी हैं।

पथरी-रोग के रोगी को जब तक रोग पूरे तौर से न चला जाय, नमक का परहेज करना चाहिए।

पथरी-रोग के रोगी को विटामिन 'सी' वाले पदार्थों का प्रचुर मात्रा में सेवन करना चाहिए। यह विटामिन तुरत तोड़े हुए ताजा फल और तरकारियों में विशेष रूप से होते हैं। खट्टे फल जैसे नीबू, आँवला, संतरा, चकोतरा, मोसंबी आदि विटामिन 'सी' के खजाने हैं। इन फलों का रस पीने की अपेक्षा ज्यादा अच्छा है कि इन्हें खाया जाय। निकाले हुए रस में विटामिन 'सी' उतने नहीं होते, जितने फलों और सब्जियों के तंतुओं में होते हैं।

पथरी-रोग में उपकारी कुछ खाद्य-द्रव्यों के नाम मैंने ऊपर दिये हैं। उनमें कुरथी के पानी का भी नाम आया है। भावप्रकाश में लिखा है कि कुरथी, कुलथा या कुलथी तीन प्रकार की होती है।

कुरथी का पानी या सूप बनाने के लिए २५० ग्राम कुरथी के दानों को लेकर तीन लीटर पानी में भिगो दीजिये। रातभर भीगने दें। सुबह उसे धीमी आँच पर पकायें। जब पानी ८७५ ग्राम रह जाय, तब उतार लें। यही कुरथी का पानी या सूप है। इस सूप में अंदाज से शुद्ध घी मिलाकर और जी चाहे तो जरा-सा नमक मिलाकर २५० ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम पीयें। पथरी के टुकड़े पेशाब की राह एक-एक करके निकल जायेंगे और रोगी रोगमुक्त हो जायगा।

: ३ :

शुक्र - यंत्र और शुक्राशय की पथरी

शुक्र एवं शुक्र-यंत्र-संस्थान

शुक्र-यंत्र-संस्थान में निम्नलिखित अंग शामिल हैं :

१. शिश्न (Penis)

२. शुक्राशय (Seminal vesicle)

३. पौरुष -ग्रन्थि (Prostate gland)

४. काउपर- ग्रंथि (Couper's gland'

५. शुक्र-नाड़ी (Seminal duct)

६. मुष्क (Testicle)

७. शिश्नाधार अस्थि (Pubic bone)

८ उपाण्ड (Epididymis)

शिश्न : शिश्न द्वारा शरीर के दो आवश्यक कार्य सम्पन्न होते हैं। १.मूत्र-त्याग और २. मैथुन के समय शुक्र-त्याग। शिश्न में तीन लम्बे-लम्बे टुकड़े होते हैं। दो टुकड़े पास-पास रहकर उसका ऊपरी भाग बनाते हैं तथा तीसरा टुकड़ा उसके नीचे होता है, जिसमें मूत्र-मार्ग स्थिर रहता है। शिश्न की जड़,जो त्वचा से ढँकी होती है, उसके ऊपरी भाग से अधिक चौड़ी होती है। समूचे शिश्न की रचना भीतर से स्पंज की तरह इस प्रकार के कोषों से हुई है, जिसमें मैथुन के समय कामोत्तेजना के कारण शरीर के रक्त का

बहाव उसमें अटककर कुछ देर के लिए वहीं रुका रहे और शिश्न कड़ा बना रहे। प्रकृति का कुछ ऐसा इंतजाम है कि शिश्न के तनाव के समय उसकी शिराओं के द्वार बन्द हो जाते हैं, जिससे उसमें आया हुआ रक्त लौट नहीं पाता और शिश्न दृढ़ बना रहता है। शुक्रपात हो जाने तथा कामेच्छा शान्त हो जाने पर जब शिश्न की शिराओं और पेशियों का रुका रक्त लौट जाता है, तब शिश्न शिथिल हो जाता है।
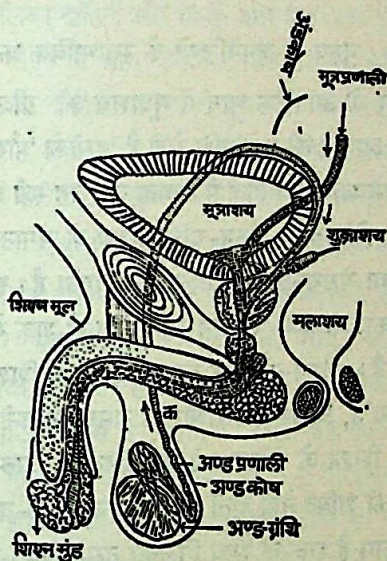
शुक्र-यंत्र-संस्थान

शुक्राशय : मूत्राशय और मलाशय के बीच दोनों ओर दो शुक्राशय होते हैं। इनमें प्रत्येक शुक्राशय ढाई इंच लम्बा और आधा इंच चौड़ा और पेंसिल की मोटाई के बराबर गहरा होता है। शुक्राशय के शुक्र, दो

शुक्रसारिणी-प्रणालियों द्वारा, जिनमें प्रत्येक ३/४ इंच लम्बी होती है, मूत्र-प्रणाली से बहिर्गत होता है। शुक्राशय वस्तुतः तीन छेदोंवाली एक थैली होती है, जिसके दो छेदों से होकर दो शुक्रवाहिनियाँ आती हैं और तीसरा छेद उसका मूत्र-मार्ग में खुलता है। शुक्राणु जब अण्डकोषों से इस थैली में आते हैं, तो उनमें शुक्राशय का भी रस मिलता है। बाद में वह रस पौरुष-ग्रंथि-रस तथा अन्यान्य ग्रंथीय रस से मिलकर मानव -वीर्य अथवा शुक्र का रूप धारण कर लेता है।

पौरुष-ग्रंथि : पुरुष के जननेन्द्रियों के स्वाभाविक कार्यों में सहायता करने के लिए शरीर के आंतरिक भाग में मूत्राशय की ग्रीवा के नीचे छोटे अखरोट के बराबर आकार की एक ग्रंथि होती है, इसीको 'पौरुष-ग्रंथि' कहते हैं। जब पुरुष में कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा जब वह स्त्री के साथ संभोग करने के लिए उद्यत होता है तो पौरुष-ग्रथि से दूध के समान एक प्रकार का लसदार क्षारीय तथा गंधयुक्त रस उत्पन्न होने लगता है। इस रस में पाये जानेवाले विशेष प्रकार के द्रव्य 'स्पर्मिन' के कारण ही शुक्र में विशेष प्रकार की गंध पायी जाती है। पौरुष-ग्रंथि के इस रस का कार्य शिश्न के अतिरिक्त भाग को गीला करना है, जिससे स्त्री संभोग के समय आसानी हो तथा संभोग के समय घर्षण से शिश्न के अन्दर की नली छिलकर जख्मी न हो जाय। इसमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति नही होती क्योंकि इनमें शुक्र-कीट नहीं होते। इस रस का मुख्य काम है शुक्र के साथ मिलकर उसमें स्थित शुक्राणुओं की, मूत्र की अम्लता से, रक्षा करना, जो शुक्राणुओं का कट्टर शत्रु है।

पौरुष-ग्रंथि यौवनावस्था में तेजी से बढ़ती है। इस ग्रंथि का सूजन आदि रोग शीघ्र-पतन और नपुंसकता के मुख्य कारण हैं। हस्त-मैथुन, उपदंश तथा किसी वजह से शुक्र को जबर्दस्ती रोक लेने से इस ग्रंथि में सूजन आ जाती है। प्रौढ़ावस्था में यह ग्रंथि सामान्यतः बढ़ जाती है।

काउपर ग्रन्थि : मूत्र-प्रणाली जहाँ समाप्त होती है, वहाँ उसके दोनों ओर मटर के दाने के बराबर दो छोटी-छोटी, गोल-गोल और पीले रंग की गिल्टियाँ होती हैं। इन्हीं को 'काउपर-ग्रन्थियाँ' कहते हैं। कामोत्तेजना के समय इनमें से शुक्र जैसा ही एक प्रकार का चिकना द्रव-पदार्थ निकलकर सारे शुक्र मार्ग में फैल जाता है और उसे चिकना कर देता है।

शुक्र-नाड़ी : शुक्र को निकाल फेंकनेवाली नलिका को 'शुक्र-नाड़ी' कहते हैं। यह नलिका दाहिनी और बायीं ओर एक-एक होती है, जो शुक्र के संचित होने की थैली के साथ 'डेफरेन्स नलिका' के अंतिम भाग के साथ मिलने से बनती है। ये दोनों नलिकाएँ मूत्र-नली के भाग में खुलती हैं, जो पतली दरार जैसे द्वार के जरिये पौरुष-ग्रन्थि को पार करता है। ये दोनों द्वार सामान्यतया बन्द रहते हैं पर शुक्रपात के समय अपने-आप खुल जाते हैं।

मुष्क : अण्डकोष की थैली में अण्डे की शकल की दो छोटी-छोटी गिल्टियाँ होती हैं जो शिश्न की दायीं और बायीं थैली के भीतर ही शुक्रवाहिनी रज्जुओं के सहारे लटकती रहती हैं। इन्हीं को 'मुष्क' कहते हैं। अण्डकोषों की थैली की त्वचा तो पतली होती है, पर खोल, जो मुष्क पर चढ़ी होती है, त्वचा की कई मोटी पर्तों से बनी होती है। इससे वह काफी दबाव और मोटा होता है। प्रत्येक मुष्क कई कोणवत् खण्डिकाओं से मिलकर बना होता है। इन्हीं खण्डिकाओं में शुक्राणु की उत्पत्ति और पुष्टि होती है। कामोत्तेजि.। होने पर मुष्क से अनगिनत शुक्राणु निकलकर अनेक मुड़ी प्रणालिकाओं और रक्त-वाहिनियों से बने उपाण्ड में और शुक्रवाहिनी-प्रणाली में एकत्र होकर शुक्राशयों में चले जाते हैं, जहाँ से मैथुन के समय वे शुक्र के साथ मूत्र-नलिका द्वारा स्त्री के गर्भाशय में दाखिल हो जाते हैं और गर्भ के कारण बनते हैं।

दोनों मुष्कों के बीच के स्थान में एक अद्भुत रासायनिक द्रव्य या रस

बनता है, जिससे कामेच्छा पैदा होती है। अन्य ग्रन्थियों के रस के सामंजस्य से उसके द्वारा पुरुषत्व एवं शरीर का विकास होता है। यह रस मानव शुक्र से बिलकुल भिन्न होता है और कभी भी शुक्र के साथ मिलकर बाहर नहीं जाता, बल्कि सीधे रक्त में मिलकर शरीर के प्रत्येक अंग का पोषण कर पुष्टता एवं क्रांति प्रदान करता है।

मुष्कों में ही एक प्रकार का और रस उत्पन्न होता है, जिसे 'शुक्र-ग्रन्थि' या 'हारमोन' कहते हैं । इसी रस से मर्द में मर्दानगी के लक्षण प्रकट होते हैं । यह रस भी सीधे रक्त में मिल जाता है ।

शिश्नाधार अस्थि : पूरा शिश्न जिस अस्थि पर स्थित है, उसे 'शिश्नाधार-अस्थि' कहते हैं ।

उपाण्ड : इसे 'उपकोष' भी कहते हैं । मुष्कों के भीतर जो क्षुद्र उपखण्ड लटकते हैं, उनमें अत्यन्त छोटी-छोटी नलिकाएँ होती हैं, जो आगे चलकर परस्पर मिल जाती हैं जिससे एक बड़ी नली बनती है । उसीको 'उपाण्ड' कहते हैं ।

शुक्र या वीर्य

मानव-वीर्य या शुक्र कोई चीज नहीं होता । जिस चीज को हम 'वीर्य' के नाम से पुकारते हैं और जो स्त्री संभोग के समय स्त्री की योनि में गिरता या किसी प्रकार से शरीर से बाहर निकलता है, वह कई चीजों और कई प्रकार की अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्रावों का मिश्रण होता है । ये सभी चीजें और स्राव अपने उचित परिमाण से परस्पर घुल-मिलकर वीर्य का रूप देते हैं। ये चीजें और स्राव निम्नलिखित हैं :

जल—७० से ८० भाग

फास्फेट आफ लाइम—६ प्रतिशत

वसा—४ प्रतिशत

आक्साइड आफ प्रोटीन—३ प्रतिशत

क्लोराइड आफ सोडियम—थोड़ी मात्रा में

फास्फेट—कुछ

शुक्र कीट : यह एक प्रकार का शक्तिशाली कोश होता है, जिसमें सिर, गर्दन और एक लम्बी पूँछ होती है। सिर के भाग में वह केन्द्र स्थित होता है, जिससे व्यक्ति के पैतृक गुण सन्तान में आ जाते हैं । शुक्र-कीट के शरीर का आकार इतना सूक्ष्म होता है कि वह केवल सुक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा ही देखा जा सकता है। आकार के अनुपात में उसकी चाल धीमी होती है। गर्भाशय के मुख के पास वीर्यपात होने के बाद वीर्य-कीटों को गर्भाशय के भीतर तक पहुँचने में प्रायः एक घण्टा लगता है और स्त्री के डिम्ब तक पहुँचने में लगभग कई घण्टे लग जाते हैं । शुक्र-कीट सजीव होते हैं । जिस प्रकार छोटी-छोटी मछलियाँ पानी में तैरती हैं, उसी प्रकार शुक्र-कीट शुक्र की तरलता में चलते-फिरते रहते हैं । उनकी यह शक्ति उन्हें स्त्री के गर्भाशय में ले जाती है।

एक बार के मैथुन में प्रायः ५ से १२ ग्राम के लगभग वीर्य निकलता है, जिसमें लगभग २० से ४० करोड़ तक वीर्य-कीट होते हैं । जब इन कीटों से प्रत्येक को अगर योग्य परिस्थिति मिले, तो एक-एक मनुष्य पैदा हो सकता है। लेकिन स्त्री-संभोग के फलस्वरूप वीर्य के स्त्री-योनि में गिरने के बाद एक समय में उसमें स्थित करोड़ों वीर्य-कीटों में से केवल एक ही कीट स्त्री के डिम्ब की बाहरी दीवार को छेदकर भीतर घुस पाता है और गर्भाशय में विकसित होकर बच्चा बन जाता है। शेष सभी कीट नष्ट हो जाते हैं ।

शुक्र कीटों की उत्पत्ति पुरुष के अण्डकोष में होती है। संभोग के समय ये शुक्र-कीट अण्डकोष में धीरे-धीरे बनते और निकलते रहते हैं । उनके अधिक

संख्या में बनकर शुक्राशय में पहुँचते ही शिश्न पर दबाव पड़ने लगता है। फलतः शुक्रपात हो जाता है।

शुक्र-कीट अपने उत्पत्ति-स्थान अण्डकोष में शुक्र-प्रणाली द्वारा चलकर पौरुष-ग्रन्थि में पहुँचकर पहले उनसे स्रावित रसों में मिश्रित होते हैं। फिर शिश्न की शुक्र-प्रणाली द्वारा बाहर निकल जाते या सम्भोग के अन्त में स्त्री के योनि-पथ में गिर जाते हैं । शुक्रकीट जिन रसों से मिश्रित होते हैं, वे हैं : शुक्राशय-रस, पौरुष-ग्रन्थि-रस, काउपर-ग्रन्थि-रस, शुक्र-कीट-रस आदि।

लगभग १४ वर्ष की आयु में पुरुष के अण्डकोषों में शुक्र-कीट बनने आरम्भ हो जाते हैं। शुद्ध शुक्र न अधिक गाढ़ा होता है और न अधिक पतला । वह मलाई जैसा गाढ़ा, मधुर, स्निग्ध तथा स्फटिक मणि के समान श्वेत होता है। स्खलन-काल में वह अत्यन्त आनन्दपूर्वक उछल-उछलकर बाहर निकलता है।

शुक्राशय में पथरी का निर्माण

वीर्य अशुद्ध होने पर शुक्राशय में पथरी का निर्माण शुरू हो जाता है। अशुद्ध और विकृत वीर्य झागरहित, अधिक शुष्क, बदरंग, दुर्गन्धियुक्त, धातु के समान मिश्रीभूत तथा जल की तरह पतला होता है। ऐसा शुक्र कभी-कभी गाँठदार होकर कष्ट के साथ बाहर निकलता है ।

अधिक मैथुन करने; अधिक परिश्रम करने, अधिक चटपटे और अप्राकृतिक भोजन करने, अकाल मैथुन, अयोनि-मैथुन (हस्तमैथुन, गुदा-मैथुन, पशुमैथुन), स्त्री की इच्छा न होते हुए भी उसके साथ मैथुन करने से, चिन्ता, भय, शोक से, वेगों को रोकने से, शौच, मैथुन, मूत्र आदि के वेग रोकने से एवं विजातीय द्रव के शुक्राशय अथवा शुक्रवाहिनियों में प्रविष्ट हो जाने से शुक्र दूषित हो जाता है ।

जो लोग मैथुन के समय आनन्द-प्राप्ति हेतु स्थानच्युत या निकलते वीर्य को रोक लेते हैं और वह रास्ते में ही अटककर रह जाता है, बाहर नहीं निकलने पाता तो उस अटके वीर्य को वायु लिंग और फोतों के बीच में मूत्राशय के मुँह पर या शुक्राशय में ही ले जाकर सुखा देती है । वैसी स्थिति में वहाँ वीर्य की पथरी बन जाती है ।

वीर्य की पथरी के लक्षण

वीर्य की पथरी बन जाने पर पेड़ू में काँटा चुभने जैसा दर्द होता है। दोनों फोते सूज जाते हैं और रोगी दुर्बलता का अनुभव करता है । काँखों में पीड़ा होती है तथा ग्लानि, पांडुता, अरुचि , मूत्रषात, तृष्णा, हृदय-वेदना तथा वमन आदि के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।

चिकित्सा

जो उपचार मूत्राशय की पथरी का है, वही शुक्राशय की पथरी का भी है ।●

: ४ :

प्लीहा, क्लोम, लार-ग्रन्थि की रेत और पथरी

प्लीहा की रेत

प्लीहा को डाक्टरी में 'स्प्लीन' और यूनानी में 'तिल्ली' या 'तिहाल' कहते हैं। यह रक्त से बनी होती है और हमारे भोजन से बने रस को अपने रंजक पित्त द्वारा रक्त में परिणत करती है । यह उदर में बायीं ओर होती है। इसे रक्त का स्थान कहते हैं । प्लीहा की आगे की ओर आमाशय होता है, जिसकी पूँछ का सिरा इसके ऊपर तक पहुँच जाता है । गुर्दे और आँतें इससे मिली रहती हैं । इसकी लम्बाई ५ इञ्च के लगभग होती है । यह बैगनी रंग की और वजन में १८८ ग्राम के करीब होती है । यकृत की तरह ही इसमें अगणित रन्ध्र होते हैं । यह जब बढ़ती है तो बायीं ओर पसली के नीचे टटोलने से मालूम होती है । संचारी रक्त का बड़ा भाग प्लीहा में संचित रहता है । यह संकुचित होती है तो यहाँ का रक्त आँतों में चला जाता है। यह संकुचित होती है तो आमाशय और आँतों में पाचन-क्रिया होती रहती है ।

रोग से उत्पन्न विषों को नष्ट करना, भोजन के पाचन में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होना, रक्त के श्वेत कणों का निर्माण करना तथा अनावश्यक लाल कणों को नष्ट करना आदि प्लीहा के प्रमुख कार्य हैं ।

शरीर में विशेषकर रक्त में विजातीय द्रव्य की वृद्धि के कारण प्लीहा में

बहुत-सी काली और खाकी रंग की रेत हो जाती है, जिसके कण बहुत छोटे-छोटे होते हैं । लेकिन यह व्याधि बहुत कम होती है । अक्सर यह रेत मूत्रादि, मल निष्कासक मार्गों से निकल जाती है ।

इस रोग में प्लीहा में दर्द और चुभने जैसी पीड़ा होती है ।

क्लोम-ग्रन्थि की पथरी

यकृत की बायीं ओर आमाशय में पीछे 'क्लोम' होता है । इसमें एक नली निकलकर क्लोम-रस को पक्वाशय में पहुँचाती है जिससे चिकनी और लसदार चीजें घुलती हैं। क्लोम की लम्बाई ५ या ६ इञ्च और वजन ६२।। या ९३।। ग्राम होती है । यह पिस्तौल के आकार का होता है । क्लोम-रस स्वच्छ, पतला और क्षारीय होता है । छोटी आँत में भोजन एक फुट भी आगे नहीं बढ़ने पाता कि उसमें पित्त और क्लोम दोनों ही प्रकार के रस आकर मिल जाते हैं। क्लोम-ग्रन्थि के पास ही पक्वाशय, प्लीहा, बड़ी आँत और अमाशय होते हैं ।

क्लोम-रस के शरीर के अन्दर चार कार्य हैं : १. भोजन के प्रोटीन भाग का विश्लेषण करना एवं घोलना। २. श्वेतसार का विश्लेषण करना । ३.स्नेहयुक्त पदार्थों का पाचन करना और ४. पिये हुए दूध को जमा देना ।

यदि ग्रन्थि जब किसी प्रकार से अस्वस्थ हो जाती है तो उसमें भी कभी-कभी छोटी-छोटी पथरियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

लार-ग्रन्थि की रेत

मुँह के भीतर दाहिने और बायें तीन-तीन नन्हीं-नन्हीं ग्रन्थियाँ होती हैं, जो मांस के भीतर रहने के कारण बाहर से दिखायी नहीं देतीं। इन्हें 'लार-ग्रन्थियाँ' कहते हैं । ये ग्रन्थियाँ लार नाम के रंगहीन तरल पदार्थ को बनाती हैं, जिसमें न गन्ध होती है और न स्वाद । भोजन चबाते वक्त यह पदार्थ जिसमें मिल जाता

है, जिससे निगलने में आसानी होती है । हमारा मुँह भीतर से, जो हर समय गीला बना रहता है, वह इन्हीं ग्रन्थियों से निकले रस के कारण ही ।

लार केवल निगलने के कार्य को ही सरल नहीं बनाती, पाचन-क्रिया में भी मदद करती है । इसके अतिरिक्त दाँतों की सफाई और रक्षा में भी लाला का बड़ा हाथ होता है ।

शरीर में विकारी पदार्थों के भर जाने से कभी-कभी इन ग्रन्थियों में भी रेत के कण उत्पन्न हो जाते हैं, पर ऐसा बहुत कम होता है ।

प्लीहा और लार-ग्रन्थि की रेत तथा क्लोम-ग्रन्थि की पथरी का इलाज पित्ताशय की पथरी के इलाज की भाँति करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत रोगी को बीजयुक्त भोजन, अनाज, अंकुरित दालें तथा क्लोरोफिलयुक्त हरे पदार्थ का सेवन कराया जाता है । लेकिन इस क्षेत्र में हुई नयी शोध के अनुसार डॉ० एन० विगमोर ने बताया है कि यदि गेहूँ के पौधे का रस दिया जाय तो सभी प्रकार के रोगों का उपचार हो सकता है । उस रस में एक टॉनिक है, जो स्वस्थ रखने में सहायक है।

: ५ :

प्रयोग-विधियाँ

उपवास : उपवास-काल में पानी में केवल कागजी नींबू निचोड़कर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में २-३ बार या इससे भी अधिक पीना चाहिए। इसके सिवा और कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए। रोज सबेरे-शाम शौच से लौटने के बाद या केवल सबेरे गरम पानी का एनिमा अवश्य लेना चाहिए। यदि तीन दिन का उपवास किया जाय तो चौथे दिन केवल फल या तरकारियों का रस या सूप लेना चाहिए।

एनिमा लेना : एनिमा किसी तख्त या कड़ी खाट पर उसके पैताने को सिरहाने से ४ इञ्च ऊँचा रखकर और पैरों को उकड़ूँ खींचे हुए चित लेटकर लेना चाहिए। एनिमा के बर्तन को लेटने की जगह से चार फुट की ऊँचाई में दीवार में एक कील गाड़कर टाँगना चाहिए और उसमें बड़ों के लिए लगभग ढाई लीटर गुनगुना पानी भरना चाहिए। नॉजल को खोलकर थोड़ा-सा पानी निकाल देना चाहिए, फिर गुदा में डालनेवाली नली को चिकनाई से चुपड़ लेना चाहिए। तब उसे गुदा-मार्ग में धीरे-धीरे १ इंच तक प्रवेश करके भीतर पानी जाने देना चाहिए। भीतर पानी जाते समय पेड़ू को धीरे-धीरे बायें से दायें मलना चाहिए और जब पानी अन्दर पहुँच जाय तो नली को निकालकर और थोड़ी देर रुककर उसी प्रकार पेड़ू को दायें से बायें मलना चाहिए, तत्पश्चात् शौच जाना चाहिए।

कटि-स्नान : टीन से बने एक कुर्सीनुमा खास टब में ठंडा पानी इतना भरें

कि उसमें बैठने पर पानी नाभि तक आ जाय। पैर टब के बाहर रहेंगे, जिन्हें आराम से किसी चौकी पर रखा जा सकता है। रोगी की पीठ टब के पिछले भाग से लगी रहेगी। टब में बैठने के बाद दाहिने हाथ में एक खुरदरा तौलिया लेकर उससे पानी में डूबे पेडू को दाहिने से बायीं ओर और बायें से दाहिनी ओर हौले-हौले मलना चाहिए। स्नान के बाद शरीर के पिछले भाग को पोंछकर और कपड़ा पहनकर टहलने निकल जाना चाहिए या कोई हलकी कसरत करना चाहिए या कम्बल ओढ़कर शरीर गरम होने तक लेटे रहना चाहिए।

मेहन-स्नानः इस स्नान के लिए कटि-स्नानवाले टब में १ फुट लम्बी और ६ इंच ऊँची तथा ६ इंच चौड़ी काठ की चौकी या ईंट रखें। टब में ठंढा पानी इतना भरें कि चौकी के चारों तरफ आ जाय। फिर चौकी पर नंगे बदन बैठें। लिंग के घूँघट को बायें हाथ की उँगलियों के बीच पकड़कर खाल के अग्रभाग को किसी मुलायम कपड़े को टब के पानी में भिगो-भिगोकर उससे धीरे-धीरे छुएँ या रगड़ें।

स्त्रियाँ इस स्नान को करते समय अपनी योनि की दोनों तरफ के बड़े ओठों को धीरे-धीरे धोयें। इस स्नान के बाद कटि-स्नान की भाँति ही शरीर को गरम करने के लिए टहलना, कसरत करना या कम्बल ओढ़कर लेटना चाहिए।

कमर की गीली लपेटः एक ७-८ फुट लम्बा और ६ इंच चौड़ा सूती कपड़ा लेकर ठंढे पानी में भिगोकर निचोड़ लें और उसे नाभि से लेकर नीचे कमर के भाग पेडू और उसके पीछे चारों ओर इस प्रकार लपेटें कि कपड़ा अच्छी तरह त्वचा को छूता रहे। उसके बाद ऊपर से उतना ही लम्बा-चौड़ा सूखा ऊनी कपड़ा लपेटें और सबको पतली रस्सी से इस प्रकार बाँध दें कि ढीला न होने पाये।

उष्णकर गीली लपेटः उष्णकर गीली लपेट यदि पेडू पर लगानी हो तो खादी का एक टुकड़ा इतना चौड़ा लें कि वह नाभि के ३ इंच ऊपर तक आ

जाय और समूचा पेडू ढँक जाय। अब इस कपड़े को ठंढे पानी में भिगोकर और निचोड़कर पेडू पर जमा कर रख दें और ऊपर से एक ऊनी कपड़ा रखकर किसी अन्य कपड़े के लम्बे टुकड़े से, जो कमर के नीचे पहले से बिछाया गया हो, उस पट्टी को लपेटकर बाँध दें । इसी प्रकार यह पट्टी शरीर के अन्य अंगों पर लगायी जा सकती है।

गरम-ठण्ढी सेंक : एक बर्तन में खूब गरम पानी रखें और दूसरे में ठण्ढा । अब ऊनी या सूती कपड़े के दो टुकड़े लें, जो सेंक दिये जानेवाले स्थान से थोड़े बड़े हों । पहले एक टुकड़े को गरम पानी में भिगोकर और निचोड़कर सेंकवाले स्थान पर ३ तह फैलाकर वहाँ सेंक दें । फिर उसे हटाकर दूसरे टुकड़े को ठण्ढे पानी में भिगोकर और निचोड़कर उस स्थान पर १ मिनट या २ मिनट जैसी आवश्यकता हो, फैलाकर रखें । इस तरह बारी-बारी से गरम-ठण्ढी सेंक लगभग १५-२० मिनट तक देनी चाहिए और ठंढे सेंक पर खतम करनी चाहिए ।

पाँवों का गरम नहान : स्टूल या कुर्सी पर बैठकर पाँवों को गरम पानी से भरी बाल्टी में रखना चाहिए । बाल्टी में पानी इतना हो कि पानी घुटनों के कुछ नीचे तक आ जाय । पानी ज्यों-ज्यों ठंढा होता जाय, बाल्ठी से थोड़ा पानी निकालकर उतना ही गरम पानी मिला देना चाहिए। स्टूल पर बैठने के बाद एक या दो कम्बल इस तरह ओढ़ लेना चाहिए कि सारा शरीर ढँका रहे और बाल्टी भी कम्बल के नीचे आ जाय, केवल चेहरा खुला रहे। सिर पर ठंढे पानी से भीगा तौलिया रखा हो। स्नान के आरम्भ में एक गिलास गरम पानी पीना चाहिए और बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा गरम पानी पीते रहना चाहिए।

इस स्नान को २० मिनट तक लेना चाहिए और स्नान के अन्त में पाँवों को ठंढे पानी से धोकर पोंछ लेना चाहिए । पसीना आ गया हो तो समूचे शरीर को ठंढे पानी से गीले कपड़े से पोंछकर कपड़े पहन लेना चाहिए ।

भाप-नहान : बन्द कमरे में रोगी को एक बेंत की कुर्सी पर बैठाकर कुर्सी के नीचे एक उबलते पानी का बर्तन रखें। रोगी के गले तक समूचा शरीर और कुर्सी इस तरह कम्बल द्वारा ढँक दें कि भाप बाहर न निकल सके। चूल्हे के ऊपर एक मुँहवाली एक केतली बैठाकर रबड़ की नली के सहारे भीतर भाप लाकर भाप-स्नान का इस्तेमाल और भी सुन्दर तरीके से हो सकता है। भाप लेने के बाद समूचे शरीर को भीगी तौलिया से पोंछ दें।

धूप-स्नान : सिर को धोकर और उस पर भीगा तौलिया लपेटकर नंगे बदन शरीर पर धूप लें। पहले ही दिन अधिक देर तक धूप न लें। रोज धीरे-धीरे धूप लेने का समय बढ़ायें। स्नान के बाद भीगी तौलिया से समूचे शरीर को पोंछ डालें।

सूखी मालिश : सिर से आरम्भ करके पैर के तलवे तक सारे शरीर को हथेली या खुरदरे तौलिये से रगड़कर लाल कर दें। उसके बाद तुरन्त ठंढे जल से स्नान कर लें और भीगे बदन को पुनः उसी प्रकार सुखा दें।

गीली चादर की लपेट : एक भीगी चादर या धोती द्वारा रोगी को गले से लेकर पैर तक ढँककर, उसके बाद ३-४ कम्बल और लिहाफ द्वारा उसको ढँक देने का नाम गीली चादर की लपेट है। साधारण तौर पर हस लपेट के भीतर रोगी को एक घण्टे तक रहना चाहिए। उसके बाद रोगी का समूचा शरीर गरम पानी में भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिए।

साँस की कसरत : हवादार जगह में पलथी मारकर बैठें। अब धीरे-धीरे साँस खींचते हुए दोनों कंधों को आगे ले जायँ। उसके बाद साँस छोड़ते हुए दूनी देर में पहले स्थान पर आ जायँ। फिर साँस खींचते हुए कंधों को ऊपर उठायें। तत्पश्चात् साँस छोड़ते हुए धीरे-धीरे नीचे ले जायँ। यह एक क्रिया हुई। यथाशक्ति इस क्रिया को कई बार करें।

गरम-ठण्ढा कटि स्नान : सिर को धोकर तथा सिर पर गीली तौलिया रखकर ३ से ६ मिनट तक पहले गरम पानी में कटि-स्नान लें । तत्पश्चात् उसके तुरन्त बाद २-३ मिनटों के लिए ठंढे पानी में कटि-स्नान लें। यह प्रयोग एक साथ ३ बार करें और अन्त में ठंढे पानी से नहा लें ।

सूखा पैक : केवल कम्बल द्वारा रोगी को गले तक ढँककर लपेट रखने को सूखा पैक कहते हैं। पैक देकर पैक के नीचे गरम बोतल या गरम थैली रखना जरूरी है । पैक खतम होने पर कुछ देर तक ठंढी मालिश करनी चाहिए ।

घर्षण-स्नान : गीले गमछे से दाहिने हाथ को ढँककर तथा गमछे का बाकी अंश बायें हाथ से अच्छी तरह पकड़कर दाहिने हाथ से रोगी की देह रगड़ने से यह स्नान सम्पन्न होता है । हाथ के सामने का गमछा तना रहना आवश्यक है । एक बार देह का सिर्फ एक छोटा अंश इस तरह रगड़कर लाल कर और बाद में ढँककर दूसरे अंश को रगड़ना चाहिए । इस स्नान को लगभग २० मिनट तक करना चाहिए ।

पाँवों की लपेट : पाँवों को फिल्ली से लेकर घुटने तक अलग-अलग ठंढे पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े से लपेटकर ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेटकर ढँक देना चाहिए । पाँवों को गरम रखने के लिए बीच-बीच में उस पर गरम पानी की थैली या बोतल रखनी चाहिए । यदि पैर ठंढा रहता हो तो पट्टा जाँघों के ऊपर बाँधनी चाहिए । लपेट देकर रोगी के समूचे शरीर को कम्बल से ढँक देना चाहिए और सिर पर भीगी तौलिया लपेट देनी चाहिए । यह लपेट १ घण्टे तक रखे ।

मिट्टी की पट्टी : साफ मिट्टी को ठंढे पानी से गीली करके एक मोटे कपड़े पर आधा इंच मोटा फैलाना चाहिए । फिर उसे उठाकर मिट्टी की ओर से

जिस अंग पर लगाना हो लगा देना चाहिए । यह मिट्टी की ठंढी पट्टी हुई । इस मिट्टी पर जब सूखा ऊनी कपड़ा लपेट रखते हैं तो उसे उष्णकर मिट्टी की पट्टी कहते हैं ।

पथरी को घुलाकर निकालनेवाले सरल योग

१. नित्यप्रति दोनों वक्त एक कागजी नीबू का रस जल में मिलाकर पियें ।

२. पालक का रस शहद मिलाकर पियें ।

३. मूली का २० ग्राम रस रोज पियें ।

४. गाजर का रस दिन में ३-४ बार पियें ।

५. चुकन्दर का रस या चुकन्दर को पानी में उबालकर उसका सूप लेने से मूत्राशय की पथरी गलकर निकल जाती है । मात्रा ३० ग्राम दिन में ३-४ बार ।

६. दूध में शहजन का रस मिलाकर पियें ।

७. ४० ग्राम मूली के बीज को आधा लीटर पानी में पकायें । जब २५० ग्राम पानी रह जाय तो छानकर पियें। ऐसा करने से कुछ दिनों में पथरी के रोग का पता नहीं लगेगा ।

८. पका जामुन खाने से पथरी रोग में लाभ होता है ।

९. जामुन की गुठली का चूर्ण दही के साथ खायें ।

१०. चौलाई, बथुआ या लोभिया के पत्तों का साग कुछ दिनों तक खाने से पथरी गल जाती है ।

११. प्रतिदिन प्रातः चने की दाल शहद मिलाकर खायें ।

१२. आँवला का चूर्ण मूली के साथ खाने से मूत्राशय की पथरी में लाभ होता है ।

१३. पपीते की जड़ के मोटे चूर्ण को ५० ग्राम शीतल जल में ६ घण्टा

भिगो रखें । फिर पीसकर, छानकर उसमें ३ ग्राम मिश्री मिलाकर प्रातः सायं पियें (७ से २१ दिन तक) ।

१४, ४० ग्राम मूली के पत्तों के रस में ३ ग्राम अजमोदा मिलाकर दिन में २ बार सेवन करने से पथरी गल जाती है ।

१५. मेंहदी की छाल को छाया में सुखाकर और बारीक पीसकर सुबह ३ ग्राम पानी के साथ पीने से पथरी-रोग दूर हो जाता है ।

पठनीयठ-साहित्य

आत्मकथा (संक्षिप्त)
गीताबोध व मंगल प्रभात
मेरे सपनों का भारत (संक्षिप्त)
बापू-कथा(१९२०-१९४८)
गांधीजी के साथ पचीस वर्ष :
महादेव भाई की डायरी (खण्ड १ से १०)
गांधी की दृष्टि
गांधी की दृष्टि : अगला कदम
व्यथा और विकल्प
बापू की मीठी-मीठी बातें (१-२)
गांधी : जैसे देखा-समझा विनोवा ने
गांधी स्तवनम्
गांधी की चुनौती
प्यारे बापू
गांधी-पुण्य-स्मरण
नारी की महिमा
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन
माता कस्तूरबा
गीता-प्रवचन
धम्मपद (नव-संहिता)
गांधी से वार्ता
प्रार्थना

महागुहा में प्रवेश
मनु-शासनम्
भागवत-धर्म-सार (मीमांसा-सहित)
गीताई चिन्तनिका
खिस्त-धर्म-सार
गुरुबोध-सार
रूहुल कुर्आन (अरबी)
स्थितप्रज्ञ दर्शन (संशोधित)
कुरान्-सार (हिन्दी)
रूहुल कुर्आन(उर्दू, नागरीलिपी)
जपुजी
ईशावास्य वृत्ति
अष्टादशी (उपनिषद्-अनुवाद)
साम्य सूत्र
अध्यात्म-तत्त्व-सुधा
विनयांजलि
स्त्री-शक्ति
राम-नाम : एक चिन्तन
आत्मज्ञान और विज्ञान
मधुकर
नाम-माला

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी ।

लेखक की अन्य रचनाएं

दमा का प्राकृतिक इलाज
घरेलू प्राकृतिक चिकित्सा
ब्लडप्रेशर की प्राकृतिक चिकित्सा
हृदय रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
अनिद्रा की प्राकृतिक चिकित्सा
मोटापा की प्राकृतिक चिकित्सा
लकवा की प्राकृतिक चिकित्सा
बवासीर की प्राकृतिक चिकित्सा
हार्निया की प्राकृतिक चिकित्सा
संधिवात की प्राकृतिक चिकित्सा
उपवास से जीवन-रक्षा (अनुवादक)

अन्य चिकित्सा-साहित्य

चर्म-रोग	डॉ० शरणप्रसाद
दमा : निदान और उपचार	,,
योग (भाग : १-२)	राधाकृष्ण नेमाणिया
कब्ज की सरल चिकित्सा : योग	,,
प्राणायाम	,,
योग द्वारा सौन्दर्य-रक्षा	,,
योग द्वारा बुढ़ापे से मुक्ति	,,

मूल्य :
[illegible] रुपये